कारणागमः

(क्रियापादः)

भाषानुवाद-टिप्पणीसहितः

सम्पादकः
प्रो० रामचन्द्रपाण्डेयः



प्रकाशकः
शैवभारती-शोधप्रतिष्ठानम्
जंगमवाडीमठ, वाराणसी-२२१००१

शोधप्रकाशन-ग्रन्थमाला – ४

कारणागमः

(क्रियापादः)

भाषानुवाद–टिप्पणीसहितः

सम्पादकः
प्रो० रामचन्द्रपाण्डेयः

प्रकाशकः
शैवभारती-शोधप्रतिष्ठानम्
जंगमवाड़ी मठ, वाराणसी-२२१००१

प्रकाशकः
शैवभारती-शोधप्रतिष्ठानम्
डी० ३५/७७, जंगमवाडी मठ
वाराणसी – २२१००१

प्रथम संस्करण, सन् १९९४

मूल्यम् :

जौहरी प्रोसेस
जंगमवाडी कटरा
वाराणसी – २२१००१

मुद्रक
जौहरी प्रिंटर्स
४१, शिवाजी नगर
महमूरगंज, वाराणसी

Research Publications Series—4

KĀRAṆĀGAMAḤ

KRIYĀPĀDAḤ

Translation with Notes

Edited by

Prof. Rama Chandra Pandey

SHAIVA BHARATI SHODHA PRATISHTHANAM
Jangamawadimath, Varanasi — 221001

Published by:
SHAIVA BHARATI SHODHA PRATISHTHANAM
D. 35/77, Jangamawadimath
Varanasi – 221001

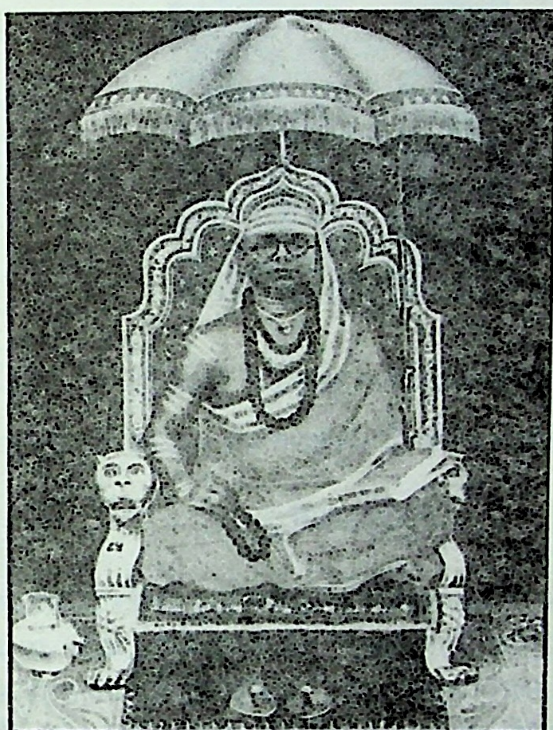
First published 1994

Price:

Laser Typeset at:
Jauhari Process
Jangamawadi Katra
Varanasi — 221001

Printed at:
Jauhari Printers
41, Shivaji Nagar
Mahmoorganj, Varanasi

समर्पण



शैवभारती शोधप्रतिष्ठान की स्थापना जिनकी संकल्पना रही,
उस महान् विभूति काशी विश्वाराध्य ज्ञानसिंहासन के
८४ वें पीठाधिपति लिंगैक्य श्री १००८ जगद्गुरु
वीरभद्र शिवाचार्य महास्वामी जी को
यह आगम-सुमन समर्पित

शैवभारती शोध प्रतिष्ठान के संस्थापक



श्री काशी विश्वाराध्य ज्ञानसिंहासनाधीश्वर

श्री १००८ जगद्गुरु डॉ० चन्द्रशेखर शिवाचार्य महास्वामीजी का

शुभाशीर्वचन

भगवान् शिव ने लोकोद्धार के लिये अपने सद्योजात मुख से ऋग्वेद का, वामदेव मुख से यजुर्वेद का, अघोर मुख से सामवेद का, तत्पुरुष मुख से अथर्ववेद का और ईशान मुख से अट्ठाईस शैवागमों का आविर्भाव किया। कामिक से वातुल पर्यन्त इन शैवागमों की संख्या अट्ठाईस है। प्रत्येक आगम ज्ञानपाद, क्रियापाद, योगपाद और चर्यापाद नामक चार पादों से युक्त है। भारतीय सनातन धर्म-दर्शन के ये निगमागम ही मूल आधार हैं। सभी सनातन धर्मावलम्बी निगमागमोक्त धर्माचरण से ही परम पुरुषार्थ को पा रहे हैं।

निगम और आगम भगवान् शिव से ही प्रादुर्भूत हैं, अत एव परस्पर विरुद्धार्थक नहीं है। श्री नीलकण्ठ शिवाचार्यजी ने अपने क्रियासार ग्रन्थ के प्रथमोपदेश में इस विषय का इस प्रकार समर्थन किया है—

परस्पराविरुद्धार्थाः शिवोक्ता निगमागमाः।
अल्पबुद्धिभिरन्योन्यं विरोधः परिकल्प्यते॥

उपर्युक्त अट्ठाईस शैवागमों के पूर्व भाग में शैव धर्माचरण और उत्तर भाग में वीरशैव धर्माचरण प्रतिपादित है। यह बात सिद्धान्तशिखामणि के निम्न वचन से सिद्ध होती है—

सिद्धान्ताख्ये महातन्त्रे कामिकाद्ये शिवोदिते।
निर्दिष्टमुत्तरे भागे वीरशैवमतं परम्॥ (सि० शि० ५।१४)

भगवान् शिव के द्वारा शैवागमों के उत्तर भाग में प्रतिपादित उस वीरशैव सिद्धान्त को भगवान् शिव के ही आदेश के अनुसार श्री रेणुक, श्री दारुक, श्री घण्टाकर्ण, श्री धेनुकर्ण और श्री विश्वकर्ण नामक पाँच आचार्यों ने भूलोक में प्रतिष्ठापित कर अनेक महर्षियों को इसका उपदेश किया है। इन आचार्यों के द्वारा उपदिष्ट वह सिद्धान्त सिद्धान्तशिखामणि आदि ग्रन्थों में संगृहीत है। इस प्रकार शिवोक्त वीरशैव सिद्धान्त उपर्युक्त पंचाचार्यों द्वारा भूलोक में प्रतिष्ठापित हुआ, अत: श्री जगद्गुरु पंचाचार्यों को वीरशैव धर्म के संस्थापकों के रूप में माना गया है।

सुविपुल वह प्राचीन आगम साहित्य दुर्लभ होता जा रहा है। अभी हमारे संस्थान के शैवभारती शोध प्रतिष्ठान के द्वारा चन्द्रज्ञानागम, सूक्ष्मागम, मकुटागम और कारणागम नामक चार आगमों का प्रकाशन हिन्दी भाषानुवाद, टिप्पणी और परिशिष्टों के साथ करते हुए हमें अपार हर्ष का अनुभव हो रहा है। इस कार्य के लिये हमारे शोध प्रतिष्ठान के आगम-तन्त्रशास्त्र के विशेषज्ञ निदेशक, राष्ट्रियपण्डित माननीय प० व्रजवल्लभ द्विवेदी का उल्लेखनीय योगदान रहा है। आपने उक्त चार आगमों में से प्रथम तीन का संपादन, टिप्पणी आदि कार्य स्वयं किया है और कारणागम का संपादन प्रो० रामचन्द्र पाण्डेय ने किया है। इन दोनों विद्वानों के सहयोग से, प्रतिष्ठान की परामर्शदात्री समिति के सौजन्य से और यहाँ अध्ययनरत प्रबुद्ध छात्रों के प्रयत्न से यह प्रकाशन-कार्य सुचारु ढंग से सम्पन्न हुआ है।

श्री जगद्गुरु विश्वाराध्य जी के आविर्भाव-काल महाशिवरात्रि के पावन पर्व पर इन चारों आगमों को हम शिवार्पित कर रहे हैं। हम आशा करते हैं कि इनके प्रकाशन से जिज्ञासु-विद्वानों तथा शोध-छात्रों को समुचित लाभ होगा। इस कार्य के सम्पादन में तत्परता से लगे हुए सभी महानुभावों पर श्री जगद्गुरु विश्वाराध्य जी का, काशी विश्वेश्वर और माता अन्नपूर्णा का निरन्तर कृपाशीर्वाद रहे।

महाशिवरात्रि, २०५० वि. इत्याशिष:

प्रकाशकीय वक्तव्य

शिवोपासना की पद्धति हमारे भारतवर्ष में सबसे प्राचीन एवं अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मानी जाती है। ऋक्, यजुः और अथर्व वेदों में शिव के ईश, ईश्वर, रुद्र, शितिकण्ठ, सर्वज्ञ, कपर्दी आदि अनेक नाम पाये जाते हैं। ऋग्वेद के ६०-७० सूक्तों में शिव के नाम, प्रभाव और स्वरूप आदि का वर्णन है। यजुर्वेद में क्रोधित शिव को शान्त करने के लिये शतरुद्र का स्वतन्त्र विधान किया गया है। इस वेद का सोलहवाँ अध्याय तो रुद्रमहिमा का प्रत्यक्ष प्रमाण ही है।

"नमः शम्भवाय च मयोभवे च नमः शङ्करायराय च
मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च" (यजुर्वेद १६।४१)।

इस मन्त्र में शिव की परम पावन महिमा का सम्पूर्ण रस भरा हुआ है। अथर्ववेद में इनको सहस्रचक्षु, तिग्मायुध, वज्रायुध और विद्युच्छक्ति आदि बताया गया है।

वैदिक साहित्य की तरह तन्त्रसाहित्य, इतिहास, पुराण, उपनिषद्, ब्राह्मणग्रन्थों में, आरण्यकों में और स्मृतियों में भी शिव की उपासना वर्णित है। तन्त्रों की रचना ही उमा-महेश्वर संवाद पर है। तन्त्रों के द्वारा भगवान् शंकर ने अपने महत्त्व को लेकर अनेक रहस्यों का उद्घाटन किया है। सम्पूर्ण तन्त्रसाहित्य शिवस्वरूप, शिवमहिमा, शिवोपासना, लिंगार्चनपद्धति, लिंगपूजा के विधान से भरा हुआ है।

कामिक आदि अट्ठाईस आगम शैवागम कहलाते हैं। इन आगमों का प्रचार एवं प्रसार कम होने से प्रत्येक धार्मिक जिज्ञासु उनका लाभ नहीं उठा पा रहे हैं। उन सभी जिज्ञासुओं के लिये उनका हिन्दी भाषानुवाद करके जब उनको प्रस्तुत किया जायगा, तब शैवागमों का महत्त्व क्या है? यह पता चलेगा। सरल एवं सुलभ हिन्दी भाषा में शैवागमों का न होना खेद की बात है। इस कमी को पूर्ण करने के लिये हमारे परमपूज्य श्रद्धेय श्री १००८ जगद्गुरु डॉ० चन्द्रशेखर शिवाचार्य महास्वामीजी जंगमवाड़ी मठ के बहु प्रयास से प्रस्तुत चन्द्रज्ञानागम, सूक्ष्मागम, मकुटागम और कारणागम इन चार आगमों को अपने मठ के शैवभारती शोध प्रतिष्ठान के द्वारा हिन्दी भाषानुवाद के साथ प्रकाशित करवाया जा रहा है। उनके आदेश को शिरोधार्य करते हुए अभी हम इन चार आगमों को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत कर रहे हैं।

महास्वामी जी के आदेशानुसार शैवभारती शोध प्रतिष्ठान के निदेशक आगम- तन्त्रशास्त्र के विद्वान् राष्ट्रिय प० श्री व्रजवल्लभ द्विवेदी जी ने इन आगमों में से प्रथम तीन का तथा दिल्ली विश्वविद्यालय के बौद्ध दर्शन विभाग के पूर्व अध्यक्ष प्रो० श्री रामचन्द्र पाण्डेय ने कारणागम का सरल हिन्दी भाषानुवाद, आवश्यक टिप्पणियों और परिशिष्टों के साथ सम्पादन किया है। अतः आप लोगो को मैं सर्वप्रथम धन्यवाद समर्पित करता हूँ।

उपर्युक्त चारों शैवागम सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के वेदान्त विभागान्तर्गत शक्तिविशिष्टाद्वैत वेदान्त की आचार्य परीक्षा में १९८४ ई० से पाठ्यग्रन्थों के रूप में स्वीकृत हैं। इस शुभ कार्य के लिये वेदान्त विभागाध्यक्ष प्रो० देवस्वरूप मिश्र महोदय जी प्रसंशा के पात्र हैं। इस ग्रन्थ के प्रकाशन कार्य में मठ के काशी वीरशैव विद्वत्संघ के कार्यदर्शी श्री ष० ब्र० मरुलसिद्ध शिवाचार्यजी, तोण्टदार्य देव, विश्वनाथ देव, सिद्धराम देव, शिवयोगी स्वामी मैसाळ, श्री महादेव शिवाचार्यजी, श्री विरूपाक्ष शिवाचार्य, सिद्धराम देव सुरकोड, राचोटी देव, मलेयोगीश्वर देव, चिदानन्द हिरेमठ (कसगीकर) तथा विशेष रूप में डॉ० जी० सी० केण्डदमठ आदि सदस्यों ने प्रेस कापी, विषय सूची, श्लोकार्धानुक्रमणी तथा अन्य परिशिष्टों को तैयार करने में हमें अपना अमूल्य समय देकर सहयोग किया है, अत: वे सभी धन्यवाद के पात्र हैं।

हमारी प्रार्थना के अनुसार विशेषत: सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के कुलपति एवं शैवभारती शोध प्रतिष्ठान के संरक्षक प्रो० वी० वेंकटाचलम् महोदय जी का भी समय-समय पर बहुमूल्य परामर्श मिलता रहा है। अत: मैं उनके प्रति भी हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ। प्रस्तुत आगम ग्रन्थों का लोकार्पण कार्य प्रो० बलदेव उपाध्याय जी एवं प्रो० बटुकनाथ शास्त्री खिस्ते जी ने अपने करकमलों से करके महनीय उपकार किया है, एतदर्थ मठ उनके प्रति भी आभार प्रदर्शित करना अपना कर्तव्य समझता है।

इन ग्रन्थों के मुद्रण कार्य को समय से पूरा करने में उल्लेखनीय सहयोग के लिये जौहरी प्रोसस एवं प्रिन्टिंग प्रेस और खण्डेलवाल प्रेस के मालिकों को तथा कर्मचारीगण को भी धन्यवाद प्रस्तुत करते हैं। साथ ही साथ प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप में सहायता देने वाले सभी जनों के प्रति मेरी कृतज्ञता समर्पित है।

सभी जिज्ञासु पाठकों से हमारा अनुरोध है कि वे अवश्य इन ग्रन्थों को एक बार मनोयोगपूर्वक पढ़ें एवं अधिकाधिक लाभ उठावें।

१०-३-९४, महाशिवरात्रि।
शैवभारती शोध प्रतिष्ठान
जंगमवाड़ी मठ, वाराणसी।

विनीत
डॉ० महेश्वर देव, प्रबन्धक
जंगमवाड़ी मठ (वाराणसी)

भूमिका

श्री काशी विश्वाराध्य ज्ञानसिंहासनाधीश्वर श्री १००८ जगद्गुरु डा० चन्द्रशेखर शिवाचार्य महास्वामीजी का पं० देवस्वरूप मिश्र के निवास पर आयोजित विद्वत्सभा में प्रथम साक्षात्कार होने के बाद उनकी विद्वत्ता और तपश्चर्या का धीरे-धीरे मुझे कालान्तर में बोध होता गया। वीरशैव दर्शन का अल्पज्ञान होने से मुझे इसके बारे में विस्तृत जानकारी श्री महास्वामीजी द्वारा लिखित उनके विद्वत्तापूर्ण ग्रन्थ सिद्धान्तशिखामणिसमीक्षा से हुई। मुझे पता चला कि मेरे गोत्रप्रवर्तक ऋषि महामुनि अगस्त्य का वीरशैव दर्शन के प्रादुर्भाव तथा प्रचार-प्रसार में कितना योगदान रहा। महास्वामी जी का निर्देश, ऋषिऋण का किञ्चित् परिमार्जन, मेरे पूज्य पिताश्री स्व० पं० राजनारायण शास्त्री (नगवा) के परमगुरु तथा फूफा के पिता स्वनामधन्य म० म० पं० शिवकुमार शास्त्री का इस दर्शन के प्रति परम अगुराग— इन सब कारणों से मैंने शैवभारती शोध प्रतिष्ठान के अन्तर्गत कारणागम का अनुवाद हिन्दी में लिखना स्वीकार किया।

दिल्ली विश्वविद्यालय के बौद्ध अध्ययन तथा दर्शनशास्त्र विभागों में ३३ वर्षों तक बौद्ध तथा भारतीय षड्दर्शन एवं पाश्चात्य तर्क-प्रमाण मीमांसा का अध्यापन और अनुसन्धान कराने की व्यस्तता के कारण दर्शनशास्त्र के क्रियापक्ष से एकदम सम्बन्ध नहीं रहा। सिद्धान्त पक्ष के अनुशीलन में संलग्न होना पाश्चात्य दर्शन की विशेषता है, परन्तु भारतीय दर्शनों की विशेषता रही है कि प्रत्येक सिद्धान्त का व्यवहार और क्रिया पक्ष सिद्धान्त को जीवनोपयोगी बनाने के लिए पूरक बन कर अवश्यमेव अनुलग्न रहता है। वर्तमान विश्वविद्यालयीय पद्धति में क्रियापक्ष को छोड़ दिया जाता है, क्योंकि तथाकथित धर्मनिरपेक्षता की क्रिया से संलग्नता बाधक मानी जाती है। अतः जब कारणागम पर कार्य प्रारम्भ किया, तब मुझे कुछ अटपटा-सा लगा, क्योंकि इस आगम में सिद्धान्त विचार स्वल्प है और इष्टलिङ्ग का पूजा-विधान ही इसका एकमात्र प्रतिपाद्य है। परन्तु संस्कारवशात् तथा कुछ नवीन विषय के ज्ञानोपार्जन की उत्सुकता से मैं इसके अनुवाद-कार्य में लग गया। क्रिया की प्रक्रियाओं का ग्रन्थान्तरों से आलोचन करने में श्रम अधिक लगा एवं अनेक उद्धृत मन्त्रों का फिर भी पूर्णतया सन्दर्भ प्राप्त नहीं हो पाया। अतः टिप्पणियों को अनेक स्थलों पर विस्तृत रूप में लिखने की अभिलाषा भी संतोषप्रद मुझे नहीं लगी। इसी वर्ष महाशिवरात्रि के अवसर पर इस ग्रन्थ को लोकार्पित करने का अप्रत्याशित निर्णय होने से शीघ्रता के कारण ग्रन्थ का सम्पादन मुझे आत्मतोष प्रदान नहीं कर सका।

जो कुछ मुझसे बन पड़ा वह भगवान् काशीपुराधीश्वर साम्बशिव को कैसा लगा है, इसका मुझे ज्ञान नहीं है। शेष सुधी पाठक बतलाने की कृपा करते रहें यही मेरी प्रार्थना है।

मैं यहाँ विस्तार में न जाकर कुछ संक्षिप्त निवेदन करना चाहता हूँ। प्रथम बात इस ग्रन्थ के स्वरूप के बारे में है। आगम ग्रन्थ होने के कारण यह शिव द्वारा जगदम्बा को बतलाया गया है। इसका मूल विषय सद्यः मुक्ति प्राप्त करने का कारण प्रतिपादित करना है, अतः संभवतः इस आगम का नाम कारणागम रखा गया है। सद्यः मुक्ति दीक्षा के द्वारा प्राप्त इष्टलिङ्ग का धारण करने से वैसे ही अनायास मिलती है, जैसे काशी में मरण से स्वतः प्राप्त होती है। दूसरी बात क्रियाओं के वैदिकत्व से है। आम धारणा प्रचलित है कि वीरशैव धर्म अवैदिक तथा ब्राह्मणों के लिए ग्राह्य नहीं है। कारणागम में यह स्पष्ट हो जाता है कि दीक्षा-विधान और पूजा-पद्धति वैदिक रीति से वैदिक मन्त्रों के द्वारा निष्पादित होती है। केवल ध्यान देने योग्य बात यही है कि जिनको वेदों का अधिकार नहीं है, उनके लिए तान्त्रिक मन्त्रों से दीक्षा-विधि प्राप्त करना तथा लिङ्ग का पूजन करना बतलाया गया है। लिङ्गपूजा में चारो वर्णों तथा स्त्रियों का समान अधिकार है, केवल मन्त्र-योजन भिन्न है। यह पूजन दीक्षा-प्राप्ति के अनन्तर नित्य कर्म बन जाता है। इष्टलिङ्ग को निरन्तर धारण करना आवश्यक है; इसके खो जाने या टूट जाने पर यत्नपूर्वक प्राण-त्याग करना भी कहा गया है, जो वीरत्व का द्योतक है। मासिक धर्म के समय तथा जनन-मरण अशौच की स्थिति में भी पूजा करते रहने का विधान बतलाया गया है। ग्रहण आदि के काल में भी पूजन की व्यवस्था बतलाई गई है। अतः यह कथन भ्रान्तिपूर्ण है कि वीरशैव धर्म वेद से बाहर है। हाँ, ध्यान देने योग्य बात यह है कि वर्णों के भेद से केवल पूजा के मन्त्रों में भेद होता है, पूजा की पद्धति, दिनचर्या आदि सबके लिए समान है। इसी तरह आवश्यकता पड़ने पर छोटी (अवसरा) पूजा की जा सकती है। पूजा न कर सकने के कारण उत्पन्न प्रत्यवाय का भी सीधा सरल प्रायश्चित्त बतला दिया गया है। यहाँ इन मूल बातों की चर्चा संक्षेप में कर दी गई है। विस्तार की अपेक्षा होने पर मूल ग्रन्थ का अवलोकन करना चाहिए। इच्छित विषय की जानकारी विस्तृत विषय-सूची में दे दी गई है।

प्रस्तुत अनुवाद को पूर्ण करने में महास्वामी जी के आशीर्वाद, परामर्श, मार्गदर्शन और प्रेरणा के साथ-साथ बन्धुवर पंडित व्रजवल्लभ द्विवेदी का निरन्तर सहयोग, परामर्श और निर्देशन भी प्राप्त हुआ। उनके द्वारा ही विषय-सूची तथा श्लोकार्ध-सूची

का निर्माण कराया गया तथा कन्नड लिपि में पूर्व प्रकाशित कारणागम का देवनागरी लिप्यन्तर भी कराया गया। अतः मैं इन दोनों को नमन करता हूँ। अन्त में भगवान् साम्ब सदाशिव सदा अपनी कृपा मुझ पर बनाए रखें, यह प्रार्थना करता हूँ।

एन् १/१, राजराजेश्वरी निवास,
नगवा, वाराणसी, २२१००५,
१०.३.१९९४

रामचन्द्र पाण्डेय
भूतपूर्व प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
बौद्ध अध्ययन एवं दर्शनशास्त्र विभाग,
संकायाध्यक्ष - कला संकाय,
दिल्ली विश्वविद्यालय,
दिल्ली.



विषयानुक्रमणिका

ग्रन्थभागः



कारणागमे उत्तरभागे

क्रियापादः

श्रीजगद्गुरवः पञ्चाचार्याः प्रसीदन्तु

प्रथमः पटलः

देव्युवाच

देवदेव जगन्नाथ सर्वज्ञ करुणानिधे।
प्रसन्नात् तत्रभवतो धर्मा नानाविधाः श्रुताः।
विहिताः पूर्वशैवानां संमताः श्रुतिसंततेः॥१॥

भवता हि पुरा प्रोक्तं करुणायन्त्रितात्मना।
वीरशैवीयधर्मास्तु सर्वधर्मोत्तमा इति।
तानद्य श्रोतुकामाऽस्मि प्रसन्नो ब्रूह्यशेषतः॥२॥

महादेव उवाच

साधु पृष्टं त्वया देवि लोकानुग्रहचित्तया।
हन्त ते कथयिष्यामि धर्मान् शाम्भवसंमतान्।
सद्योमुक्तिप्रदानद्य मदीयज्ञानसाधनान्॥३॥

शाम्भवव्रतपरिग्रहणम्

यदेतच्छाम्भवं नाम व्रतं श्रुत्यन्तसंमतम्।
पुनर्भवप्रहाणाय मुमुक्षुस्तत्समाचरेत्॥४॥

देवी ने कहा —

हे देवों के देव, जगन्नाथ, सर्वज्ञ, करुणासागर! आपके प्रसन्न होने से अनेक प्रकार के धर्म सुने, जो पूर्व शैवों के लिए विहित हैं और श्रुति परम्परा में सम्मत हैं॥१॥ करुणा के वशीभूत होकर आपने पहले कहा था कि वीरशैवों के धर्म सभी धर्मों में श्रेष्ठ हैं। आज मैं उनके बारे में जानना चाहती हूँ। प्रसन्न होकर आप उन सारे धर्मों को बतलाएँ॥२॥

महादेव ने कहा —

लोगों के प्रति अनुग्रह करने की इच्छा से, हे देवि! तुमने ठीक ही प्रश्न किया। आज मैं उन धर्मों को तुम्हें बतलाऊंगा जो शाम्भव परम्परा में मान्य हैं, सद्यः मुक्ति देने वाले हैं और शिव को जान सकने के साधन हैं॥३॥

यह जो श्रुति के अन्त्य भाग, अर्थात् उपनिषदों में मान्य शाम्भव व्रत है, वह पुनर्जन्म का नाश करता है। मोक्ष चाहने वाला इस व्रत का आचरण करे॥४॥

ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वानप्रस्थो यतिस्तु वा।
योषिद्वा परिगृह्णीयात् सद्योमुक्तिं यदीच्छति॥५॥
विद्यते नास्य सदृशं वेदेष्वन्येषु वा क्वचित्।
काङ्क्षेत मुक्तिं यः सद्यः स एतद्व्रतमाचरेत्॥६॥
तितीर्षुर्जन्मवाराशिं गुरुपोतं समाश्रयेत्।
सम्यक् परीक्ष्य वै शिष्यं गृह्णीयाद् देशिकोत्तमः॥७॥
निवेदयिष्यन्मज्ज्ञानं दद्यादादौ शिरोव्रतम्।
अन्यथा गुरुशिष्यौ तौ पततो नरकाम्बुधौ॥८॥
अत्याश्रमं पाशुपतं शाम्भवं तच्छिरोव्रतम्।
इत्येवं नामभिः पुण्यैर्निगमान्तेषु गीयते॥९॥

दीक्षात्रयनिर्देशः

तनुत्रयगतानादिमलत्रयमसौ गुरुः।
दीक्षात्रयेण संदह्य लिङ्गत्रयमुपादिशेत्॥१०॥

ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ अथवा यति, वह स्त्री भी क्यों न हो, उसे इस शांभव व्रत का ग्रहण करना चाहिए॥५॥ वेदों में या अन्यत्र भी कहीं इस व्रत जैसा व्रत नहीं बताया गया है। जो व्यक्ति सद्यः मुक्ति चाहता है, उसे इस व्रत का ग्रहण करना चाहिए॥६॥ यदि जन्म - रूपी समुद्र को पार करने की इच्छा हो तो व्यक्ति गुरु-रूपी जहाज का सहारा ले और श्रेष्ठ गुरु (देशिक) उसकी ठीक-ठीक परीक्षा कर शिष्य-रूप में स्वीकार करे॥७॥ शिव का ज्ञान कराने की कामना से सर्वप्रथम शिरोव्रत प्रदान करे, अन्यथा दोनों गुरु और शिष्य नरक के समुद्र में गिर जाएँगे। तात्पर्य यह है कि शिव के स्वरूप का ज्ञान कराने के पहले शांभव दीक्षा रूपी शिरोव्रत प्रदान करना चाहिए॥८॥ उपनिषदों में इस शिरोव्रत को अत्याश्रम,. पाशुपत, शाम्भव व्रत — इन पुण्य नामों से कीर्तित किया गया है॥९॥

वह गुरु स्थूल, सूक्ष्म तथा कारणरूपी तीनों शरीरों[1] में स्थित कार्मिक, मायीय एवं आणव इन तीन अनादि मलों[2] को क्रमशः क्रिया, मान्त्री और वेधा दीक्षाओं के

---

१. स्थूल, सूक्ष्म और कारण इन त्रिविध शरीरों में जीवात्मा अणुरूप में वर्तमान रहता है। यद्यपि जीवात्मा प्रति शरीर में एक है और उसके तीन शरीर विभाग का अर्थ है कि एक ही शरीर का स्थूल रूप वह है, जिससे विभिन्न क्रियाएँ होती हैं। सूक्ष्म रूप शरीर मन, प्राण आदि के रूप में रहता है, जो तन्मात्राओं से उद्भूत होता है। इन दोनों से परे कारण शरीर है, जो वास्तव में मलों से आवृत परमशिव का संकुचित रूप है। विशेष द्रष्टव्य — सिद्धान्तशिखामणिसमीक्षा, पंचम परिच्छेद।

२. द्र. सि. शि. १८.१७, जीव मलों से आवृत रहता है। ये मल तीन प्रकार के होते हैं। पर-

स्वाग्रे स्थितस्य शिष्यस्य देशिकः करुणानिधिः।
कुर्याद् दीक्षां महाशैवीमविद्यापाशकृन्तिनीम्॥११॥
दीयते लिङ्गसम्बधः क्षीयते च मलत्रयम्।
दीयते क्षीयते यस्मात् सा दीक्षेति निगद्यते॥१२॥
सा दीक्षा परमा शैवी त्रिधा भवति निर्मला।
एका वेधात्मिका साक्षादन्या मन्त्रात्मिका मता।
क्रियात्मिका परा काचिदेवमेव त्रिधा भवेत्॥१३॥
हस्तमस्तकसंयोगाद् दृष्टेर्वेधेति कीर्त्यते।
गुरुणोदीरिता कर्णे सा हि मन्त्रात्मिका भवेत्।
शिष्यपाणितले दत्ता या दीक्षा सा क्रिया भवेत्॥१४॥
अत्रैकैकापि विख्याता दीक्षासप्तकशोभिता।
तत्प्रकारं प्रवक्ष्यामि शृणुष्वैकाग्रमानसा॥१५॥

भस्म द्वारा करके इष्ट, प्राण और भाव-रूपी त्रिविध लिङ्गों[3] का उपदेश करे॥१०॥करुणा का सागर गुरु सामने उपस्थित शिष्य के अविद्या रूपी पाश को काटने वाली महाशैवी दीक्षा उसे प्रदान करे॥११॥ इष्ट, प्राण और भावरूपी लिङ्गों से सम्बन्ध करानेवाली (दीयते) और त्रिविध मलों को क्षीण करनेवाली (क्षीयते) विधि को दीक्षा कहा जाता है। अर्थात् दीजाने वाली और क्षीण करने वाली होने के कारण इसे दीक्षा कहा जाता है॥१२॥ यह श्रेष्ठ और निर्मल शैवी दीक्षा तीन प्रकार की होती है– पहली वेधा दीक्षा, दूसरी मान्त्री दीक्षा और तीसरी क्रिया दीक्षा॥१३॥ हस्त और मस्तक के संयोग और दृष्टि द्वारा वेध करने को वेधा दीक्षा कहते हैं। गुरु द्वारा शिष्य के कानों में उपदिष्ट मन्त्र द्वारा दी जाने वाली दीक्षा मन्त्ररूपी दीक्षा होती है। जिसमें शिष्य के हाथ में इष्टलिङ्ग प्रदान किया जाता है, वह दीक्षा क्रियारूपा होती है॥१४॥ इनमें से प्रत्येक दीक्षा सात-सात प्रकार की बतलाई गई है। मैं उन प्रकारों को बतलाता हूँ, एकाग्र चित्त होकर सुनो॥१५॥

शिव की इच्छाशक्ति का संकोच आणव मल है, जिससे जीव अपने को अपूर्ण मानता है। संकुचित ज्ञानशक्ति मायीय मल कहलाता है, जिसके कारण जीव अपने को परशिव से भिन्न मानता है और शरीरादि रूप में अपने को जानता है। परशिव की क्रियाशक्ति का संकोच कार्म मल कहलाता है, जो शुभ और अशुभ कर्ममय है। द्र. सि. शि. स., पृ० २९६

३. लिङ्ग तीन प्रकार के होते हैं—इष्टलिङ्ग, प्राणलिङ्ग और भावलिङ्ग। गुरुद्वारा प्रदत्त स्थूल लिङ्ग, जिसका शरीर पर धारण, पूजन आदि किया जाता है, इष्टलिङ्ग कहलाता है। जिस लिङ्ग को हृदयकमल में भावनामय रूप में धारण किया जाता है, वह सूक्ष्म अथवा प्राणलिङ्ग

मण्डपनिर्माणविधिः

दीक्षयिष्यन्निहाचार्यः शिष्यं पूर्वोक्तलक्षणम्।
युक्तकाले तदङ्गानि द्रव्याण्याहृत्य यत्नतः।
मण्डपं कारयेत् सम्यग्वक्ष्ये तल्लक्षणं यथा॥१६॥
दशभिः सूर्यहस्तैर्वा मनुभिर्नृपहस्तकैः।
दीक्षार्थं मण्डपं कुर्यात् षोडशस्तम्भसंयुतम्॥१७॥
एतेषां मण्डपानां च पञ्चहस्तोन्नतिं विदुः।
चतुरस्रं चतुर्द्वारं चतुस्तोरणभूषितम्॥१८॥
न्यग्रोधस्तस्य पूर्वस्यां दक्षिणस्यामुदुम्बरः।
अश्वत्थ उत्तरस्यां च प्लक्षः पश्चिमतो भवेत्॥१९॥
नवभागैकभागे तु मध्ये वेदीं प्रकल्पयेत्।
हस्तमात्रसमुत्सेधां दर्पणोदरसन्निभाम्॥२०॥
कुण्डानि कल्पयेत्तत्र नव पञ्चैकमेव वा।
पूर्वस्मिंश्चतुरश्रं स्याद्वह्नौ पिप्पलपत्रवत्॥२१॥
अर्धचन्द्रं तु याम्ये स्यान्नैर्ऋत्यां तु त्रिकोणकम्।
वृत्तं स्याद्वारुणे भागे वायव्ये तु षडश्रकम्॥२२॥

पूर्वोक्त लक्षणों से युक्त शिष्य को दीक्षा देने के निमित्त उचित काल में दीक्षा के अङ्गभूत द्रव्यों को प्रयत्नपूर्वक लाकर ठीक प्रकार से मण्डप का निर्माण कराए। मण्डप का लक्षण इस प्रकार है॥१६॥ मनुष्य के दस या बारह या चौदह हाथ के परिमाण वाला मण्डप दीक्षा देने के लिए बनवाए, इस मण्डप में सोलह खम्भे होने चाहिए॥१७॥ मण्डप की ऊँचाई पांच हाथ की हो। मण्डप चौरस चार द्वारों से युक्त और चार तोरणों से सुशोभित हो॥१८॥ इसके पूर्व में न्यग्रोध, दक्षिण में गूलर, उत्तर में पीपल और पश्चिम में प्लक्ष होने चाहिए॥१९॥ इस मण्डप के नौ भाग करे– मध्य भाग में एक वेदी बनाएँ जो एक हाथ ऊँची दर्पण[४] के उदर के समान हो॥२०॥ मण्डप में नौ अथवा पांच अथवा एक कुण्ड का निर्माण कराएँ। (यदि नौ कुण्ड बनाने हों तब) पूर्व में चौकोर, अग्नि कोण में पीपल के आकार का॥२१॥ दक्षिण में अर्धचन्द्र के आकार का, नैर्ऋत्य कोण में त्रिकोणाकार, पश्चिम में गोलाकार, वायव्य कोण में षट्कोणात्मक॥२२॥ उत्तर में कमल के आकार का, ईशान कोण

कहलाता है। भावलिङ्ग परात्पर भावनातीत अव्यक्त परब्रह्म शिवरूप है। द्र. सि. शि. ६.४८-५० तथा सि. शि. स., पृ० ३७४-३७५.

४. दर्पणोदर = जैसा दर्पण का उन्नतोदर आकार होता है, वैसा।

पद्मं स्यादुत्तरे भागे चैशान्यामष्टकोणकम्।
स्यादीशानेन्द्रयोर्मध्ये वृत्तं वा चतुरश्रकम्॥२३॥
इन्द्रादिसोमकाष्ठान्तमैशान्यां च प्रकल्पयेत्।
चतुरश्रार्धचन्द्रे च वृत्तं पद्मं च वर्तुलम्॥२४॥
एकाग्निवेदिका पूर्वे चोत्तरे पश्चिमेऽपि वा।
ईशान्यां चतुरश्रं वा वृत्तं वाऽपि प्रकल्पयेत्॥२५॥
स्थण्डिलं वाऽथ कुर्वीत हस्तमात्रप्रमाणकम्।
सिकताभिर्मृदा वाऽपि गुणाङ्गुलमितोन्नतिम्।
मण्डपं रचयित्वैवं ध्वजाद्यैस्तं विभूषयेत्॥२६॥
मुक्ताजालवितानैश्च फलपल्लवपङ्कजैः।
रम्भाभिर्दर्भमालाभिर्दर्पणैर्धूपवर्तिभिः ॥२७॥
तत्र गौरीलतालिङ्गमण्डलं विलिखेद् बुधः।
पञ्चवर्णयुतैश्चूर्णैरथवा शुभ्रवर्णकैः॥२८॥

दीक्षाविधानम्

स्नातः सभस्मरुद्राक्षः सकलीकृतविग्रहः।
गुरुर्माहेश्वरैः सार्धं प्राप्य मण्डपमस्य तु॥२९॥

में अष्टकोणात्मक, ईशान कोण और पूर्व के बीच वृत्ताकार या चौकोर— इस प्रकार नौ कुण्डों का निर्माण कराएँ॥२३॥ (यदि पांच कुण्ड बनाने हों तब) पूर्व में चौकोर, दक्षिण में अर्धचन्द्राकार, पश्चिम में गोलाकार, उत्तर में कमल के आकार का तथा ईशान कोण में गोलाकार कुण्ड बनाए॥२४॥ यदि अग्नि की एक ही वेदी बनानी हो, तब पूर्व या उत्तर या पश्चिम या ईशान कोण में चौकोर अथवा गोलाकार रूप में बनाए॥२५॥ अथवा एक हाथ के माप का, बालू या मिट्टी का, तीन अंगुल की ऊँचाई वाला एक चबूतरा बनाए। इस प्रकार मण्डप की रचना हो जाने के बाद झंडी आदि से॥२६॥ मोती के जालों के चँदवे से; फल, पत्ते, कमल, केले आदि की मालाओं से; शीशा, धूप की बत्ती आदि से उसे सजाए॥२७॥ वहाँ पांच रंगों को मिलाकर अथवा केवल सफेद चूर्ण से गौरीलता[५] से वेष्टित मण्डल का आलेखन करे॥२८॥

स्नान करने के बाद भस्म के साथ रुद्राक्षों से पूरे शरीर को सजाकर गुरु माहेश्वरों के साथ पहुँचने के बाद उन चारों द्वारों को मन्त्र रूपी अस्त्र[६] से झाड़कर पूजन

---

५. गौरीलता = प्रियंगु (हिन्दी, पियाल) की लता।
६.अस्त्र = फट् स्वरूप, जो मन्त्र के अन्त में लगाया जाता है।

द्वाराण्यस्त्रेण सम्प्रोक्ष्य तानि चत्वारि चार्चयेत्।
ॐ हाँ शान्तिकलाभिख्यद्वाराय नम इत्यपि।
ॐ हाँ विद्याकलाभिख्यद्वाराय नम इत्यपि॥३०॥
हाँ निवृत्तिकलाभिख्यद्वाराय नम इत्यपि।
हाँ प्रतिष्ठाकलाभिख्यद्वाराय नम इत्यपि।
पूर्वादीनि समभ्यर्च्य ततस्तच्छाखयोर्न्यसेत्॥३१॥
नन्दिनं च महाकालं भृङ्गिणं च विनायकम्।
वृषं स्कन्दं तथा देवं चण्डं द्वौ द्वौ चतुर्ष्वपि॥३२॥
तालत्रितयमस्त्रेण कृत्वा वामाङ्घ्रिपार्ष्णितः।
घातत्रयं तथा कृत्वा विघ्नानुत्सार्य यत्नतः॥३३॥
द्वाराण्यस्त्रेण तूद्घाट्य प्रतीचीद्वारतो बुधः।
अन्तः प्रविश्य यागोपकरणान्यवलोक्य च॥३४॥
अस्त्रप्राकारावृतश्च कवचेनावगुण्ठितः।
सुखासने तूपविशेत् कुशादिपरिकल्पिते॥३५॥
ततः स शिष्यस्ताम्बूलदक्षिणाभस्मसंयुतम्।
पात्रं गृहीत्वा प्रब्रूयादेवं सद्गुरुसन्निधौ॥३६॥

करें॥२९॥ पूजन के चार मन्त्र इस प्रकार हैं— १. ॐ हाँ शान्तिकलाभिख्यद्वाराय नमः, २. ॐ हाँ विद्याकलाभिख्यद्वाराय नमः॥३०॥ ३. हाँ निवृत्तिकलाभिख्यद्वाराय नमः, ४. हाँ प्रतिष्ठाकलाभिख्यद्वाराय नमः। इन मन्त्रों से क्रमशः पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर द्वारों की अर्चना करने के अनन्तर उन द्वारों में से प्रत्येक के दोनों बाजुओं पर॥३१॥ (पूर्व में) नन्दी और महाकाल; (दक्षिण में) भृङ्गी और विनायक; (पश्चिम में) वृष और स्कन्द; (उत्तर में) देव और चण्ड इन दो-दो देवों का न्यास करे॥३२॥ बाएँ पैर के जंघे से मन्त्रास्त्र सहित तीन बार ठोंक कर ताल बजाएँ और प्रयत्न पूर्वक विघ्नों को दूर कर॥३३॥ द्वारों को मन्त्रास्त्र पठन पूर्वक खोले और पश्चिम द्वार से विद्वान् गुरु भीतर प्रवेश करे। तदनन्तर याग की सामग्री का निरीक्षण करके॥३४॥ अस्त्र के मन्त्र रूपी चहारदीवारी (प्राकार) से घिरा तथा मान्त्रिक कवच में लिपटा गुरु कुशासन पर सुखासन लगा कर बैठे॥३५॥ इसके बाद ताम्बूल, दक्षिणा और भस्म से युक्त पात्र को लेकर सद्गुरु के समक्ष शिष्य इस प्रकार कहे—॥३६॥ संसार रूपी समुद्र में डूबे, जन्मरूपी मगर (ग्राह) के भय से आकुल, मृत्यु के पाश से

संसाराम्बुधिनिर्मग्नं जन्मग्राहभयाकुलम्।
मृत्युपाशवशं दीनं कृपयाऽनुगृहाण माम्।
इति विज्ञाप्य तत्पात्रं संस्थाप्याग्रेऽभिवादयेत्॥३७॥
गुरुस्तत्पात्रमानीय निक्षिप्य गणमध्यके।
परिगृह्य गणानुज्ञामुपविश्यासने पुनः॥३८॥
दीक्षयिष्यन्निहाचार्यो देशकालौ निगद्य च।
गणेशपूजनं कुर्यात् स्वस्तिपुण्याहवाचनम्॥३९॥
पुनर्गणान्नमस्कृत्य देशकालौ प्रकीर्त्य च।
देहत्रयगतानादिमलत्रयनिवृत्तये॥४०॥
लिङ्गत्रयानुसंधानयोग्यतावाप्तयेऽपि च।
षडध्वशुद्धिपूर्वेण शाम्भवेन व्रतेन तु॥४१॥

सप्तविधा दीक्षा

दीक्षयिष्य इमं शिष्यं शक्तिपातविधानतः।
इति संकल्प्य दद्याच्च सप्त दीक्षाः क्रियान्तराः॥४२॥
आज्ञोपमा च कलशाभिषेकाख्या ततः परम्।
स्वस्तिकारोहणं भूतिपट्टमायत्तमेव च।
स्वायत्तमिति सप्तैताः क्रियादीक्षान्तरा मताः॥४३॥

बंधे मुझ दीन शिष्य पर कृपा करके आप अनुग्रह करे। इस प्रकार निवेदन करके उस पात्र को गुरु के सामने रखकर अभिवादन करे॥३७॥ गुरु उस पात्र को लेकर अपने गणों के बीच में रखकर गणों के अनुमोदन से पुनः आसन पर बैठ जाए॥३८॥ और संकल्प में देश-काल का निर्देश करके गणेशपूजन, स्वस्तिवाचन[७] एवं पुण्याहवाचन[८] करें॥३९॥ फिर गणों को नमन करके संकल्प के निमित्त देश-काल का निर्देश करते हुए स्थूल, सूक्ष्म और कारण रूप तीनों देहों में स्थित कार्मिक, मायीय और आणव इन तीन अनादि मलों को दूर करने के लिए॥४०॥ तथा इष्ट, प्राण और भाव इन तीन लिङ्गों के ग्रहण की योग्यता का शिष्य में निष्पादन के लिए शाम्भवव्रत से पूर्व गुरु षडध्व[९] की शुद्धि करे॥४१॥

"मैं (गुरु) शक्तिपात[१०] के विधान से इस शिष्य को दीक्षित करूँगा" ऐसा संकल्प करके क्रिया दीक्षान्तर्गत सात अवान्तर दीक्षाएँ दे॥४२॥ क्रियादीक्षान्तर्गत

---

७. स्वस्तिवाचन की विधि के लिए दे. वीरशैवदीक्षाविधि, पृ० ६६-६७

८. पुण्याहवाचन की विधि के लिए दे. वहीं, पृ० १२-२०

९. षडध्व = भुवनाध्व, पदाध्व, वर्णाध्व, कलाध्व, तत्त्वाध्व और मन्त्राध्व।

१०. शक्तिपात = ईश्वरानुग्रह, द्र. सि. शि. स., पृ० २९९

परित्यज्य सदाचारं मा प्रवर्तस्व सर्वदा।
इत्याज्ञादीक्षयाऽऽदिश्य ततस्त्वेवं वदेद् गुरुः ॥४४॥
पुरातनकृताचारसदृशं कुर्विति स्फुटम्।
उपमादीक्षयाऽऽदिश्य शिष्यपापापनुत्तये।
प्राणानायम्य विधिवत् पञ्चगव्यानि साधयेत् ॥४५॥
श्रीपञ्चकलशार्थं तु ऋत्विजो वृणुयाद् गुरुः।
चतुर्णां चतुराचार्या मध्यस्य च स्वयं भवेत् ॥४६॥
आवाहयेच्च कलशे मध्ये त्वीशानमग्रतः।
सद्योजातं च पूर्वस्मिन् वामदेवं तु दक्षिणे ॥४७॥
उत्तरे तत्पुरुषं च अघोरं चाथ पश्चिमे।
तत्तन्मन्त्रैः समावाह्य पूजयेत्तदनन्तरम् ॥४८॥

सात अवान्तर दीक्षाएँ इस प्रकारहैं— १. आज्ञादीक्षा, २. उपमादीक्षा, ३. कलशाभिषेकदीक्षा, ४. स्वस्तिकारोहणदीक्षा, ५. भूतिपट्टदीक्षा, ६. आयत्तदीक्षा, ७. स्वायत्तदीक्षा ॥४३॥ आज्ञा दीक्षा– इस दीक्षा के द्वारा गुरु आदेश देता है कि तुम (शिष्य) सर्वदा सदाचार का परित्याग करके व्यवहार मत करना, अर्थात् सदाचार को व्यवहार में कभी मत छोड़ना। उपमादीक्षा देते हुए गुरु स्पष्ट कहता है कि ॥४४॥ प्राचीन लोगों द्वारा किए गए आचार के समान तुम भी आचरण करोगे। इसके बाद शिष्य के पापों को दूर करने के लिए विधिवत् प्राणायाम करके पञ्चगव्य[११] सिद्ध करे ॥४५॥ गुरु श्री पञ्चकलशों के निमित्त ऋत्विग् लोगों का वरण करे, जिसमें चार के लिए चार आचार्यों का वरण करे तथा मध्य में स्थित कलश के लिए स्वयं ऋत्विक् बने ॥४६॥ मध्य में स्थित कलश में ईशान[१२] का, पूर्व में स्थित कलश में सद्योजात[१३] का, दक्षिण में स्थित कलश में वामदेव[१४] का ॥४७॥ उत्तर

---

११. पञ्चगव्य = गोमूत्र, गोमय (गोबर), गोदुग्ध, गोघृत, गाय के दूध का दही।

१२-१६. शिव के पाँच मुख हैं—ईशान, तत्पुरुष, अघोर, वामदेव और सद्योजात। ये क्रमशः आकाश, वायु, तेजस्, जल और पृथ्वी तत्त्व स्वरूप वाले हैं तथा 'नमः शिवाय' इस मन्त्र का विपरीत क्रम से प्रत्येक अक्षर इनका बीजाक्षर या बीजमन्त्र होता है।
इनके मन्त्र वेदों मे वर्णित हैं, यथा–
ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानां ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोऽधिपतिर्ब्रह्मा शिवो मे अस्तु सदाशिवोम् ॥ महानारायणोपनिषद्, १०-८
तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि। तन्नो रुद्रः प्रचोदयात् ॥

जलाधिवासनम्

मण्डपोत्तरदिग्भागे मण्डलं परिकल्प्य तु।
शिवलिङ्गं समुद्धृत्य पञ्चसूत्रोपलक्षितम्॥४९॥
ताम्रपात्रे विनिक्षिप्य देशकालौ प्रकीर्त्य च।
घर्षणादिक्रियाजातजातदोषोपशान्तये ॥५०॥
हिरण्यशृङ्गप्रमुखैरनुवाकैरनुक्रमात्।
शिवलिङ्गं स्नापयामीत्यभिषिञ्चेदनन्तरम्॥५१॥
पञ्चगव्येन सिद्धेन शुद्धैः पञ्चामृतैरपि।
अभिषिञ्चेदिष्टलिङ्गं पञ्चब्रह्ममनूत्तमैः॥५२॥

में स्थित कलश में तत्पुरुष[15] का और पश्चिम में स्थित कलश में अघोर[16] का उन-उन देवों के मन्त्रों से आवाहन करे। इसके बाद उनका पूजन करे॥४८॥

मण्डप की उत्तर दिशा में मण्डल बनाकर पञ्चसूत्र[17]प्रक्रिया से निर्मित शिवलिङ्ग को निकालकर॥४९॥ तांबे के पात्र में रखे। देश - काल का उल्लेख करते हुए कहे "मैं घर्षण आदि अनेक क्रियाओं से उत्पन्न दोषों को दूर करने के लिए॥५०॥ हिरण्यशृङ्गम्[18] इत्यादि अनुवाकों के द्वारा क्रम से शिवलिङ्ग को स्नान कराता हूँ"। इसके बाद॥५१॥ सिद्ध पञ्चगव्य और शुद्ध पञ्चामृत[19] से पञ्चब्रह्म[20] (सद्योजातादि) मन्त्रों का पाठ करते हुए इष्टलिङ्ग का अभिषेक करे॥५२॥ फिर शुद्ध जल से अभिषेक

अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः। सर्वेभ्यः शर्व सर्वेभ्यो नमो अस्तु रुद्ररूपेभ्यः॥
वामदेवाय नमो ज्येष्ठाय नमः श्रेष्ठाय नमः कालाय नमः कलविकरणाय नमो बलाय नमो बलविकरणाय नमो बलप्रमथनाय नमः सर्वभूतदमनाय नमो मनोन्मनाय नमः॥
सद्योजातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमो नमः। भवे भवे नातिभवे भवस्व मां भवोद्भवाय नमः॥

१७. पञ्चसूत्र – लिङ्गवृत्तसमं पीठं दीर्घं विस्तारमेव च। तदर्धं गोमुखं विद्यादित्येतल्लिङ्गलक्षणम्॥
अर्थ – लिङ्ग की गोलाई का जो माप है, उतना ही माप पीठ का हो, उसी माप से लम्बा और फैलाव हो। इस माप के आधे माप का गोमुख हो। इस तरह गोलाई आदि पाँच मापों से बनना लिङ्ग का पञ्चसूत्र कहलाता है।

१८. हिरण्यशृङ्ग मन्त्र – सम्पूर्ण सूक्त के लिए दे. वीरशैवलिङ्गब्राह्मणदशकर्मपद्धति, पृ० ७६-७८

१९. पञ्चामृत – क्षीर, दधि, घृत, मधु, चीनी इनको मिलाकर पञ्चामृत बनता है।

२०. ईशान आदि शिव के पाँच स्वरूप और उनके मन्त्र।

शुद्धोदकेन तल्लिङ्गं पुनः संस्नाप्य देशिकः।
पात्रान्तरे विनिक्षिप्य नैर्ऋते पद्ममण्डले।
निक्षिप्य गन्धपुष्पाद्यैरर्चयेद् देशिकोत्तमः ।।५३।।
ततः शाणादिसंघर्षजाततापोपशान्तये।
वारुणे मण्डले प्रस्थमितपानीयपूरिते ।।५४।।
ताम्रपात्रे तु निक्षिप्य तल्लिङ्गं वस्त्रवेष्टितम्।
जलाधिवासनं कुर्यादब्लिङ्गैर्मनुभिस्ततः ।।५५।।
जलादुत्तार्य तल्लिङ्गं स्नानपात्रे निधाय वै।
तत्पात्रं तु विनिक्षिप्य मण्डले वायुकोणगे ।।५६।।
पञ्चगव्येन च तथा भस्मना गन्धवारिभिः।
तदुक्तमन्त्रैः संस्नाप्य लिङ्गमुद्वर्त्य वाससा ।।५७।।
पात्रान्तरे विनिक्षिप्य तत्पात्रं सोममण्डले।
निधाय गन्धपुष्पाद्यैरर्चयेद् देशिकस्ततः ।।५८।।

धान्याधिवासनम्

सप्तधातुस्फूर्तये तु कुर्याद्धान्याधिवासनम्।
तद्विधानं प्रवक्ष्यामि शृणु देवि समासतः ।।५९।।

कराकर सद्गुरु नैर्ऋत्य कोण में रखे पात्र में जो कमल मण्डल है, उसमें रखकर गन्ध, पुष्प आदि से पूजन करे।।५३।। इसके बाद सान आदि पर घिसने से उत्पन्न उष्णता रूप दोष का शमन करने के लिए पश्चिम मण्डल में स्थित एक प्रस्थ (पंसेरी?) मात्रा जल से भरे ताम्र पात्र में डाल कर वस्त्र में लपेट उस इष्ट लिङ्ग को जल में डुबा दे। अप् आदि उत्तम मन्त्रों का पाठ करते हुए।।५४-५५।। उसको फिर जल से निकालकर स्नान पात्र में रख दे और उस पात्र को वायव्य कोण में स्थित मण्डल में रखे।।५६।। पञ्चगव्य, भस्म तथा सुगन्धित जल से उन पूर्वोक्त मन्त्रों के साथ अभिषेक करके कपड़े से पोंछे।।५७।। और दूसरे पात्र में इष्टलिङ्ग को रखकर उस पात्र को सोममण्डल में स्थापित करे और गुरु उसे गन्ध, पुष्प आदि से पूजित करे।।५८।।

इसके बाद सात धातुओं[21] की वृद्धि के निमित्त इष्टलिङ्ग को धान्य में रखे। इसके विधान को मैं संक्षेप में बतलाता हूँ। हे देवि! सुनो।।५९।। दक्षिण मण्डल

---

२१. सप्त धातु—त्वक्, असृक्, मांस, मेदा, अस्थि, मज्जा और शुक्र।

दक्षिणे मण्डले प्रस्थप्रमितैः शालिभिः क्रमात्।
तदर्धैस्तण्डुलैश्चैव तदर्धैश्च तिलैस्तथा ॥६०॥
उपर्युपरि विन्यस्य स्थण्डिलानि प्रयत्नतः।
दर्भैराच्छाद्य तल्लिङ्गं प्राक्छिरस्कमधोमुखम् ॥६१॥
तत्र निक्षिप्य गन्धादीन् दर्भांस्तत्पुरुषेण तु।
लिङ्गे निक्षिप्य तस्याष्टदिक्षु कुम्भान् विनिक्षिपेत् ॥६२॥
अष्टविद्येश्वरांस्तेषु चावाह्य परिपूज्य च।
वस्त्रैराच्छाद्य कुर्वीत शिवाग्निमुखमप्यथ ॥६३॥
शयनाल्लिङ्गमुद्धृत्य वह्निदिग्गतमण्डले।
संस्थाप्य रुद्रसूक्तेन संस्नाप्य तदनन्तरम्।
मण्डले पूर्वदिक्संस्थे निक्षिप्य च समर्चयेत् ॥६४॥
पुनस्तल्लिङ्गमादाय मण्डले त्वीशकोणगे।
पात्रान्तरे विनिक्षिप्य पञ्चरुद्रैस्तु स्नापयेत्।
धान्याधिवासकलितमण्डलीकलशोदकैः ॥६५॥

में एक प्रस्थ धान्य, उसका आधा चावल, चावल का आधा तिल ॥६०॥ इनको क्रम से ढेरी बनाकर एक के ऊपर एक करके प्रयत्न पूर्वक रखे फिर उस इष्टलिङ्ग को ऊपर की ओर सिर और नीचे की ओर मुख करके कुशों से ढँक दे ॥६१॥ तत्पुरुष मन्त्र से गन्ध आदि तथा कुशों को लिङ्ग के ऊपर रखकर उसकी आठों दिशाओं में आठ घड़ों को स्थापित करे ॥६२॥ उन घड़ों में आठ विद्येश्वरों[२२] का आवाहन करके पूजन करे और उनको कपड़ों से अलग-अलग ढांक कर शिवाग्निमुख बनाए ॥६३॥ शयन से इष्टलिङ्ग को उठाकर अग्निकोण के मण्डल में रख दे। रुद्रसूक्त से अभिषेक करने के बाद पूर्व दिशा में स्थित मण्डल में उस इष्टलिङ्ग को रखकर पूजन करे ॥६४॥ फिर से उस इष्ट लिङ्ग को लेकर ईशान कोण में स्थित दूसरे पात्र में रख और पञ्चरुद्र[२३] मन्त्रों से जिसमें धान्य रखा गया था, उस मण्डल के कलश के जल से अभिषेक कराए ॥६५॥

---

२२. आठ विद्येश्वर—अनन्त, सूक्ष्म, शिवोत्तम, एकनेत्र, रुद्र, त्रिमूर्ति, श्रीकण्ठ, शिखण्डी—दे. सि. शि. ३.४४

२३. पञ्च रुद्रमन्त्र—ईशान आदि के मन्त्र दे. ऊपर टिप्पणी।

अध्वन्यासादिविधिः

ततःशिवकलावाहनार्थं कुर्याद् यथाविधि।
अध्वन्यासान् षडप्यत्र लिङ्गे संकल्पपूर्वकम्॥६६॥
भुवनाभिख्यमध्वानं पट्टिकायामधो न्यसेत्।
तत्कञ्जे तु पदाध्वानं वर्णाध्वानं च मध्यके॥६७॥
ऊर्ध्वकञ्जे कलाध्वानं पट्टिकायां तथा पुनः।
तत्त्वाध्वानं च विन्यस्येत्तत आज्यप्रघारिके।
मन्त्राध्वानं च विन्यस्य गन्धाद्यैरभिपूजयेत्॥६८॥

अग्न्यादिस्थापनम्

तत्कलास्थैर्यसिद्ध्यर्थं होमं कुर्याद् विचक्षणः।
चतुर्विंशत्युत्तरत्रिशतसंख्यायुतेन च।
पञ्चाक्षरेण मनुना सतारेण तथा पुनः॥६९॥
प्रधानकुण्डे जुहुयाद् व्याहृतीभिर्घृतेन तु।
जयादिभिश्च जुहुयादग्निं रक्षेदनन्तरम्॥७०॥
शिष्यं समाह्वयन् सौम्यं सौम्यात्रोपविशेति च।
कूर्मासनोपरिगते कुशादिपरिकल्पिते॥७१॥

इसके बाद संकल्प करके शिव की कलाओं का आवाहन करने के लिए कथित विधि से छः अध्वन्यासों को करे॥६६॥ भुवन नामक अध्व का पट्टिका के नीचे न्यास करे। उसकी पट्टी में पदाध्व का, मध्य में वर्णाध्व का॥६७॥, ऊपर की पट्टी में कलाध्व का, फिर पट्टिका में तत्त्वाध्व का, घी के पात्र में मन्त्राध्व का न्यास करे और गन्ध आदि से पूजन करे॥६८॥

इन कलाओं को स्थिर रखने के लिए विद्वान् गुरु पञ्चाक्षर (नमः शिवाय) को तीन सौ चौबीस बार ॐ कार से युक्त करके पढ़ते हुए॥६९॥ व्याहृतियों[२४] के साथ प्रधान कुण्ड में घी से हवन करे। जयादि मन्त्रों से भी हवन करे। बाद में अग्नि को संभालकर रख ले॥७०॥ सौम्य शिष्य को "हे सौम्य! कुशादि द्वारा निर्मित इस कूर्मासन[२५] के ऊपर बैठो" ऐसा कहे॥७१॥आसन पर बैठा कर पहले पञ्चब्रह्म

---

२४. भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, सत्यम् ये सात व्याहृतियाँ हैं।

२५. कछुए के आकार का आसन।

आसने समुपावेश्य पञ्चब्रह्ममनूत्तमैः।
करन्यासं विधायादौ प्राणसन्धारणादिभिः।
विशोध्य देहं तदनु विदध्याद् भूतशोधनम्॥७२॥
सकलीकरणं कुर्याच्छिष्यदेहस्य देशिकः।
पञ्चगव्येन तस्याथ कुर्यादन्तर्विशोधनम्॥७३॥
अथ शिष्यस्याभिषेकदीक्षां दद्याद् गुरूत्तमः।
अनादिभवसंपन्नसर्वदोषोपशान्तये ॥७४॥
पञ्चकुम्भोदकैः शुद्धैः शिष्यं संस्नापयेदपि।
पञ्चतत्त्वविशुद्ध्यर्थं पञ्चब्रह्ममनून् जपन्॥७५॥
पञ्चकुम्भेषु घटितं सूत्रमुद्धृत्य देशिकः।
विश्वेत्तातेति तद्धस्ते बध्नीयात् कङ्कणं ततः॥७६॥

षडध्वशोधनम्

षडध्वशोधनद्वारा मांसपिण्डनिवृत्तये।
स्वस्तिकारोहणाभिख्यां दीक्षां दद्याद्यथाविधि॥७७॥
संहारक्रमतो विद्वान् शब्दार्थात्मषडध्वनः।
पादादिषु तु विन्यस्येच्छिष्यस्य नियतात्मनः॥७८॥

मन्त्रों से करन्यास करवा कर प्राणायाम आदि से शरीर का शोधन कराने के बाद भूतशोधन करवाए॥७२॥ देशिक गुरु शिष्य की देह का सकलीकरण (कलाओं से संवलित) करे। बाद में पञ्चगव्य से देह के भीतर शुद्धि कराए॥७३॥ अब उत्तम गुरु शिष्य को अभिषेक दीक्षा प्रदान करे। इसका प्रयोजन अनादि काल से चली आ रही जन्म परम्परा से उत्पन्न सम्पूर्ण दोषों का शमन करना है॥७४॥ पाँच कलशों के शुद्ध जल से पाँच तत्त्वों[२६] के शोधन के लिए पञ्चब्रह्म मन्त्र का जप करता हुआ गुरु शिष्य को स्नान कराए॥७५॥ उन पाँच घड़ों में लपेटे सूत्रों को निकालकर गुरु विश्वेत्तात इस मन्त्र से उनका कंकण बनाकर शिष्य के हाथ में बांध दे॥७६॥

षडध्व के शोधन द्वारा मांस पिण्ड की भावना की निवृत्ति के लिए विधिपूर्वक स्वस्तिकारोहण दीक्षा प्रदान करे॥७७॥ गुरु संहार क्रम से षडध्व का, जो शब्दार्थ रूप है, शान्त चित्त वाले शिष्य के पैर आदि में न्यास करे। अर्थात् पैर से

---

२६. पृथ्वी, अप्, तेज, वायु और आकाश ये पाँच तत्त्व माने गए हैं। इनसे सृष्टि उत्पन्न होती है।

वर्णाध्वानं शब्दरूपं विन्यस्येत् पादयोर्बुध:।
अर्थरूपं कलाध्वानं मेढ्रे न्यस्येदनन्तरम्॥७९॥
शब्दरूपं पदाध्वानं नाभौ विन्यस्य देशिक:।
तत्त्वाध्वानं त्वर्थरूपं हृदि न्यस्येदतन्द्रित:॥८०॥
मन्त्राध्वानं शब्दरूपं विन्यस्यैवं मुखे तथा।
अर्थरूपं च भुवनाध्वानं न्यस्येच्छिरस्यपि॥८१॥
पादादिषु शिखान्तेषु षट्सु स्थानेषु संयत:।
षडक्षराणि विन्यस्य षड्वारं देशिकस्तत:॥८२॥

भूतिरुद्राक्षधारणम्

अनादिमलसंहृत्यै भूतिपट्टाख्यदीक्षया।
स्नानमुद्धूलनं भूत्या धारणं चापि कारयेत्।
तत: शिखादिस्थानेषु रुद्राक्षान् धारयेत् क्रमात्॥८३॥
रुद्राक्षमेकं संमन्त्र्य सम्पूज्य च यथाविधि।
शिष्यस्य दक्षिणे हस्ते बध्नीयाद् बन्धमुक्तये॥८४॥
शिष्यदेहस्थाणवादिमलत्रयनिवृत्तये।
चतुर्विंशत्युत्तरत्रिशतसंख्यायुतेन तु।
पञ्चाक्षरेण जुहुयात् सतारेण घृतेन वै॥८५॥

ऊपर सिर की ओर जाना संहार क्रम होता है॥७८॥ शब्द रूप वर्णाध्वा का गुरु दोनों पैरों में न्यास करे। अर्थ रूप कलाध्वा का लिङ्ग में न्यास करे॥७९॥ शब्दरूप पदाध्वा का गुरु नाभि में न्यास करके गुरु सावधानी से शिष्य के हृदय में अर्थरूप तत्त्वाध्वा का न्यास करे॥८०॥ गुरु शब्दरूप मन्त्राध्वा का इसी प्रकार मुख में न्यास करके अर्थरूप भुवनाध्वा का सिर पर न्यास करे॥८१॥ पैर से लेकर शिखा पर्यन्त छ: स्थानों में संयत होकर गुरु षडक्षर (ॐ नम: शिवाय) का छ: छ: बार न्यास करने के बाद॥८२॥

अनादि मलों का नाश कराने के निमित्त भूतिपट्टदीक्षा के द्वारा गुरु शिष्य को भूति, अर्थात् भस्म से स्नान कराए उसके शरीर पर भस्म लपेटे (उद्धूलन) और भस्म का त्रिपुण्ड्र धारण कराए। फिर शिखा आदि स्थानों में क्रम से रुद्राक्षों को धारण कराए॥८३॥ एक रुद्राक्ष को यथाविधि पूजित करके जन्म के बन्धन से मुक्ति पाने के लिए गुरु शिष्य के दाहिने हाथ में बांध दे॥८४॥ शिष्य के शरीर में स्थित आणव आदि तीन मलों को दूर करने के लिए तीन सौ चौबीस बार पञ्चाक्षर (नम: शिवाय) मन्त्र का जोर जोर से उच्चारण करते हुए घी से हवन करे॥८५॥

हुत्वा व्याहृतिभिश्चैव जयादिभिरपि क्रमात्।
पूर्णाहुतिं विधायाग्निं शिष्यहृत्सरसीरुहे।
संहारमुद्रयाऽऽरोप्य पिदध्यान्मण्डलद्वयम्॥८६॥
रुद्रादिक्षेत्रपालान्तं बलिं तत्पूर्वमण्डले।
द्वितीये च महेन्द्रादिमहेशान्तं बलिं क्षिपेत्।
अनन्तरं गुरुर्दद्याद् दीक्षामायत्तसंज्ञिताम्॥८७॥

आयत्तदीक्षा स्वायत्तदीक्षा च

मध्यमण्डलनिक्षिप्तं सूत्रपञ्चकलक्षितम्।
शान्तेश्वराभिधं सर्वमन्त्रन्यासोपशोभितम्॥८८॥
इष्टलिङ्गं समादाय वामहस्तेऽभिपूज्य च।
सौम्यैतल्लिङ्गमीक्षस्वेतीष्टलिङ्गं प्रदर्शयेत्॥८९॥
गुर्वन्तेवासिनोर्मध्ये ग्राहयित्वा पटं तदा।
चूर्णिकामङ्गलध्वानैः पठेयुर्मङ्गलाष्टकम्॥९०॥
ततो माहेश्वरैः सार्धं शिष्यमुद्दिश्य देशिकः।
अङ्गत्रयेऽपि दृढतो लिङ्गवान् भव सर्वदा॥९१॥

क्रमशः जयादि व्याहृतियों से भी हवन करके पूर्णाहुति करने के बाद शिष्य के हृदय कमल में अग्नि को संहार मुद्रा से आरोपित करके दो मण्डलों को ढंक दे॥८६॥ रुद्र से क्षेत्रपाल तक की बलि पूर्व मण्डल में, महेन्द्र से महेश पर्यन्त की बलि दूसरे मण्डल में प्रदान करे। इसके अनन्तर गुरु आयत्त नामक दीक्षा प्रदान करे॥८७॥

बीच के मण्डल में रखे पञ्चसूत्र की प्रक्रिया से निर्मित्त शान्तेश्वर नामक इष्टलिङ्ग जिसे सारे मन्त्रों के न्यास से शोभित कर दिया गया है॥८८॥ बाएँ हाथ में लेकर पूजन करने के बाद कहे– "हे सौम्य! इस इष्टलिङ्ग को देखो।" ऐसा कहकर शिष्य को इष्टलिङ्ग दिखाए॥८९॥ गुरु और शिष्य के बीच में कपड़े का एक पर्दा डालकर मङ्गल वाद्य बजाते, गुलाल उड़ाते हुए सभी लोग मङ्गलाष्टक[27] का पाठ करे॥९०॥ तदनन्तर माहेश्वरों के साथ गुरु शिष्य से कहे– "तुम सर्वदा स्थूल, सूक्ष्म और कारण रूपी त्रिविध शरीर में लिङ्ग से युक्त रहो॥९१॥ ऐसा कहते हुए पर्दे

---

२७. मङ्गलाष्टक–दे. वीरशैवलिङ्गिदशकर्मपद्धति, पृ० १७७-१७८

इति ब्रुवन् जवनिकां वर्जयन् शिष्यमूर्धनि।
ध्रुवं त इति मन्त्रेण निक्षिपेन्मङ्गलाक्षतान्॥९२॥
उत्तराभिमुख: शिष्यं वामभागे निजासने।
निवेशयन् तस्य दद्याद् दीक्षां स्वायत्तसंज्ञिताम्॥९३॥
वस्त्रेणाच्छादयन् शिष्यमात्मानं च गुरुस्तदा।
वामहस्तं तु शिष्यस्य मूलेनैवाभिमन्त्र्य च॥९४॥
सप्तवारं सुसम्पूज्य स्ववामकरसंस्थितम्।
निक्षेपत्तत्र तल्लिङ्गं त्रियम्बकमनुं स्मरन्।
तत: सप्तापि दद्याच्च दीक्षास्ता: समयादिका:॥९५॥

सप्तविधा दीक्षा

आद्या समयसंज्ञा स्यान्नि:संसारा द्वितीयका।
निर्वाणाख्या तृतीया स्यात् तत्त्वसंज्ञा चतुर्थिका॥९६॥
पञ्चमाध्यात्मसंज्ञा स्यात् षष्ठी तत्त्वविशोधिनी।
सप्तमी तत्त्वबोधा स्याद् वेधादीक्षान्तरा इमा:॥९७॥

समयदीक्षा

प्राणानायम्य च गुरु: सप्तेमा: समयादिका:।
करिष्य इति सङ्कल्प्य तन्मूर्धानं समर्च्य च॥९८॥

को हटाकर शिष्य के सिर पर 'ध्रुवं ते' इस मन्त्र से मङ्गलाक्षत फेंके॥९२॥ उत्तर की ओर मुख करके अपने आसन के बाएँ भाग में शिष्य को बैठाकर गुरु स्वायत्तदीक्षा प्रदान करे॥९३॥ स्वयं को तथा शिष्य को वस्त्र से आच्छादित करके गुरु शिष्य के बाएँ हाथ को मूल मन्त्र (नम: शिवाय) से अभिमन्त्रित करे॥९४॥ तथा अपने बाएँ हाथ में स्थित इष्ट लिङ्ग की सात बार पूजा करके 'त्रियम्बक'[२८] मन्त्र का स्मरण करते हुए उस इष्टलिङ्ग को शिष्य के हाथ पर रख दे। इसके बाद समय आदि सात दीक्षाएँ दे॥९५॥

पहली समयदीक्षा, दूसरी नि:संसारदीक्षा, तीसरी निर्वाणदीक्षा, चौथी तत्त्वदीक्षा॥९६॥ पाँचवीं अध्यात्मदीक्षा, छठी तत्त्वविशोधिनी दीक्षा तथा सातवीं तत्त्वबोध दीक्षा – ये वेधा दीक्षा की अवान्तर दीक्षाएँ हैं॥९७॥

गुरु प्राणायाम करके ''मैं समय आदि दीक्षाएँ दूंगा'' ऐसा संकल्प करने के बाद

---

२८. त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिम्पुष्टिवर्धनम्। उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात्॥ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिम्पतिवेदनम्। उर्वारुकमिव बन्धनादितो मुक्षीय मामुत:॥ (शु. य. ३.६०)

षडक्षरेण मनुना हस्तं स्वस्य च दक्षिणम्।
षड्वारमभिमन्त्र्याथ शिवहस्तं विभाव्य च।
तं शिष्यशिरसि न्यस्य पठेदेकाग्रमानसः ॥९९॥
अयं मे हस्त इत्येवं मन्त्रं शिष्यं विलोकयन्।
भो शिष्येति च सम्बोध्य ब्रूयादेवं विचक्षणः ॥१००॥
हित्वा बन्धुजने प्रीतिं तां भक्तेषु स्थिरां कुरु।
एवं समयमादिश्य निःसंसारां निबोधयेत् ॥१०१॥

निःसंसारा दीक्षा

देहेन्द्रियादिसंसारं परिहृत्य सदा मम।
पूजोपचारः संसार इति भावय चेतसि।
इत्यादिश्य च दद्याच्च दीक्षां निर्वाणसंज्ञिताम् ॥१०२॥

निर्वाणदीक्षा

मलत्रयसमुद्भूते तापत्रयभयाकुले।
दुरन्ते दुर्भवोपान्ते मनो न कुरु यत्नतः।
इति निर्वाणमादिश्य दद्यात् तत्त्वाभिधायिनीम् ॥१०३॥

बाद शिष्य के सिर को पूजित करे ॥९८॥ उसके बाद षडक्षर मन्त्रसे (ॐ नमः शिवाय) अपने दाहिने हाथ को छः बार अभिमन्त्रित करके अपने हाथ को यह शिव का हस्त है, ऐसी भावना करता हुआ शिष्य के सिर पर रख कर एकाग्र मन से ॥९९॥ शिष्य को देखता हुआ 'अयं मे हस्तो भगवान्' इस मन्त्र का पाठ करे। 'हे शिष्य'! इस प्रकार सम्बोधित करते हुए गुरु इस प्रकार कहे ॥१००॥ "बन्धुओं से प्रेम हटा कर उस प्रेम को शिव भक्तों के प्रति लगाओ" इस प्रकार समयदीक्षा का उपदेश देकर निःसंसारदीक्षा प्रदान कर कहे कि ॥१०१॥

"देह, इन्द्रिय आदि के संसार को त्याग कर मन में भावना करो कि शिव की पूजा ही संसार है।" इसके बाद निर्वाण दीक्षा का उपदेश करते हुए कहे ॥१०२॥

"आणव आदि तीन मलों से उत्पन्न त्रिविध (आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक) तापों के अपार भय से आकुलित कुत्सित जन्म से प्रयत्न करके मन को दूर करो।" इस प्रकार निर्वाण दीक्षा का उपदेश देकर तत्त्वदीक्षा का उपदेश करते हुए कहे ॥१०३॥

तत्त्वदीक्षा

लिङ्गाङ्गतत्त्वे विज्ञाय लिङ्गसायुज्यवान् भव।
उपदिश्यैवमथ च दद्यादध्यात्मसंज्ञिताम् ॥१०४॥

अध्यात्मदीक्षा

प्राणे लिङ्गं प्रतिष्ठाप्य लिङ्गे प्राणं निधाय च।
लिङ्गं निरीक्षमाणः सन् लिङ्गप्राणी सदा भव।
आदिश्यैवं ततो दद्यात् तत्त्वसंशोधनात्मिकाम् ॥१०५॥

तत्त्वसंशोधनदीक्षा

शब्दादीन् विषयान् सर्वांस्तत्तदिन्द्रियगोचरान्।
आचारलिङ्गमुख्येभ्यः षड्लिङ्गेभ्यः समर्पयन् ॥१०६॥

तत्त्वबोधाख्या दीक्षा

वर्तस्व शुद्धधीर्नित्यं प्रयतोऽपि जितेन्द्रियः।
उपदिश्यैवमपि च दद्यात् तत्त्वोपदेशिनीम्।
दद्याद्दीक्षां विधानज्ञः कृपापरवशो गुरुः ॥१०७॥
सच्चित्सुखनिजाकारं लिङ्गं यद् ब्रह्मसंज्ञितम्।
तदसि त्वमुपास्वातस्तदेवाहमिति ध्रुवम्।
वेधाख्यया दीक्षयैवं शिष्यमादिश्य देशिकः ॥१०८॥

कि "इष्टलिङ्ग और अङ्ग के तत्त्व को जानकर इष्टलिङ्ग के साथ सायुज्य (एकात्मकता) स्थापित करो।" ऐसा उपदेश देकर अध्यात्मदीक्षा प्रदान करते हुए कहे॥१०४॥

कि "अपने प्राण में इष्टलिङ्ग को प्रतिष्ठित करके तथा इष्टलिङ्ग को देखते हुए उसमें अपने प्राणों को स्थिर करके लिङ्गप्राण बनो।" इस प्रकार आदेश देकर तत्त्वसंशोधन दीक्षा देते हुए कहे॥१०५॥

कि "सारे शब्द आदि विभिन्न इन्द्रियों के विषयों को आचार लिङ्ग आदि छः इष्ट लिङ्गों को समर्पित करते हुए॥१०६॥

सदा शुद्ध, बुद्धि से पवित्र रहते हुए इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करके आचरण करो।" इस प्रकार उपदेश देकर विधान को जानने वाला कृपा के वशीभूत होकर गुरु तत्त्वोपदेशिनी दीक्षा देते हुए कहे॥१०७॥ कि "इष्ट लिङ्ग सत्, चित्, आनन्द रूप आत्म (निजाकार) स्वरूप है, जिसे ब्रह्म कहते हैं, वह तुम्हीं हो। अतः ऐसी उपासना करो, वह निश्चित रूप से मैं (अर्थात् शिव) ही हूँ।" इस प्रकार देशिक गुरु शिष्य को उक्त सात प्रकारों वाली वेधा दीक्षा प्रदान करके॥१०८॥

सप्तविधा मन्त्रदीक्षा

प्राणानायम्य च गुरुर्मनुदीक्षाचिकीर्षया।
सप्त चैकाग्रचित्ताद्या दद्याद् दीक्षा अनुक्रमात्॥१०९॥
तत्रैकाग्रमतिस्त्वाद्या द्वितीया तु दृढव्रता।
पञ्चेन्द्रियार्पणाभिख्या तृतीया परिकीर्तिता॥११०॥
अहिंसाख्या तुरीया स्याल्लिङ्गनिष्ठा तु पञ्चमी।
अनन्तरा विनिर्दिष्टा षष्ठी लिङ्गमनोलया।
सप्तमी तु समाख्याता सद्योमुक्तिसमाह्वया॥१११॥
तत्स्वरूपं प्रवक्ष्यामि शृणु देवि समासतः।
इष्टलिङ्गात् परं वस्तु शिष्य त्वं नावलोकय।
इत्येकाग्रमतिं दत्वा दीक्षां दद्याद् दृढव्रताम्॥११२॥
शरीरपातपर्यन्तं न जहीहि व्रतान्यपि।
दृढव्रतामिति प्रोक्त्वा दद्यात् पञ्चेन्द्रियार्पणाम्॥११३॥
सत्यहं मत्पतिर्लिङ्गमिति निश्चित्य चेतसि।
सदा तनुमनोभावानिष्टादिभ्यः समर्पय।
इत्यादिश्य ततो दद्यादहिंसासंज्ञितां गुरुः॥११४॥

प्राणायाम करे। फिर मन्त्र की दीक्षा देने की इच्छा से एकाग्रचित्त आदि सात अवान्तर भेदों वाली मान्त्री दीक्षा प्रदान करे॥१०९॥ पहली एकाग्रमति दीक्षा, दूसरी दृढ़व्रता दीक्षा, पञ्चेन्द्रियार्पणा नामक तीसरी दीक्षा,॥११०॥ चौथी अहिंसा दीक्षा, पाँचवीं लिङ्गनिष्ठा दीक्षा, छठी मनोलया दीक्षा और सातवीं सद्योमुक्ति दीक्षा बतलाई गई है॥१११॥ हे देवि! संक्षेप में मैं इनका स्वरूप बतलाता हूँ जिसे सुनो। एकाग्रमति दीक्षा देते हुए गुरु कहता है कि "किसी वस्तु को इष्टलिङ्ग से बड़ा मत समझो।" इसके बाद दृढव्रता दीक्षा देते हुए गुरु कहता है॥११२॥ "शरीर को त्यागने के काल पर्यन्त व्रतों (नियमों) का त्याग न करना।" इस प्रकार दृढव्रता दीक्षा का उपदेश देने के बाद गुरु पञ्चेन्द्रियार्पण दीक्षा प्रदान करे॥११३॥ "हे शिष्य! अपने मन में यह निश्चय कर लो कि मैं स्वयं सती हूँ और इष्टलिङ्ग मेरा पति है। अपने शरीर, मन और भावों को इष्टलिङ्ग के प्रति समर्पित कर दो।" इस प्रकार आदेश देकर गुरु अहिंसादीक्षा प्रदान करते हुए कहे॥११४॥ "इन सभी

सर्वाणीमानि भूतान्यप्यात्मवत् परिभावयन्।
मा हिंसीरित्युपादिश्य लिङ्गनिष्ठामुपादिशेत्॥११५॥
आदिमध्यान्तरहितं लिङ्गं यद् ब्रह्मसंज्ञितम्।
तन्निष्ठो भव सद्बुद्ध इत्युपादिश्य सद्गुरुः।
दीक्षामुपदिशेद् भूयो लिङ्गरूपमनोलयाम्॥११६॥
लिङ्गरूपमभिध्यायन्नमनस्कश्चिरं भव।
इत्यादिश्य पुनर्दद्यात् सद्योमुक्तिसमाह्वयाम्॥११७॥

मन्त्रोपदेशविधिः

मदुक्तार्थे स्थिरमतिः प्रवर्तस्व विसंशयः।
इति सम्बोध्य स गुरुर्मन्त्रद्वयमिदं पठेत्।
प्राणेष्वन्तरिति स्पष्टं शिवेन वचसेति च॥११८॥
शिष्यस्य दक्षिणे कर्णे षडक्षरमनुं शनैः।
त्रिवारमुपदिश्यैवं भावितां मनुदीक्षया॥११९॥
शैवीं कलां स्वमनसा विभाव्य च ततः परम्।
दृष्टावानीय च तया शिष्यवामकरस्थिते।
लिङ्गे निवेशयेत् क्षिप्रं मूलमन्त्रमनुस्मरन्॥१२०॥

भूतों को अपने जैसा समझते हुए उनकी हिंसा मत करो।" इस तरह उपदेश देकर लिङ्गनिष्ठा दीक्षा बतलाए॥११५॥ "जिस इष्टलिङ्ग को ब्रह्म कहा जाता है, जो आदि, मध्य और अन्त से रहित है, उसमें हे सम्यक् बुद्धि वाले शिष्य! अपनी निष्ठा रखो।" ऐसा उपदेश देकर फिर इष्ट लिङ्ग में मनोलया दीक्षा का उपदेश दे॥११६॥ कहे— "इष्टलिङ्ग का ध्यान करते हुए चिरकाल तक संकल्प - विकल्प रहित मन से युक्त बनो।" इस प्रकार उपदेश देकर फिर सद्योमुक्ति दीक्षा प्रदान करते हुए कहे॥११७॥

"मेरे कहे गए वचन पर संशयरहित होकर दृढ़बुद्धि से व्यवहार करो"— ऐसा आदेश देकर वह गुरु इन दो मन्त्रों 'प्राणेष्वन्तः'[२९] तथा 'शिवेन वचसा'[३०] का स्पष्ट पाठ करे॥११८॥ शिष्य के दाहिने कान में धीरे-धीरे षडक्षर मन्त्र (ॐ नमः शिवाय) का तीन बार उपदेश देकर मन्त्र दीक्षा से भावित॥११९॥ शैवी कला को अपने मन में भावना करे। इसके बाद उस कला को दृष्टि में निहित करके उसको शिष्य

---

२९. प्राणेष्वन्तर्मनसो लिङ्गमाहुः। अथर्वशिरस्।

३०. शिवेन वचसा त्वा गिरिशाच्छा वदामसि। यथा नः सर्वमिज्जगदयक्ष्मं सुमना असत्॥ (शु. य. १६.४)

यथा कला तथा भावो यथा भावस्तथा मनः ।
यथा मनस्तथा दृष्टिर्यथा दृष्टिस्तथा स्थलम् ॥१२१॥
जलकुम्भाग्रसद्व्याप्ततैलबिन्दुर्यथा तथा ।
देहप्राणात्मसु व्याप्ता संस्थिता शाम्भवी कला ॥१२२॥
ज्वलत्कालानलाभासा तटित्कोटिसमप्रभा ।
तस्योर्ध्वे तु शिखा सूक्ष्मा चिद्रूपा परमा कला ॥१२३॥
या कला परमा सूक्ष्मा तत्त्वानां बोधिनी परा ।
तामाकृष्य यथान्यायं लिङ्गे समुपवेशयेत् ।
प्राणप्रतिष्ठामन्त्रं च मूलमन्त्रं पठेदपि ॥१२४॥
अथास्मिन् संस्कृते लिङ्गे सुस्थिरो भव सर्वदा ।
किञ्च भक्तैकगात्रस्त्वं भवेत्यभ्यर्थयेच्च माम् ॥१२५॥
मा भूया भौतिकप्राणी लिङ्गप्राणी भवेति च ।
शिष्यमादिश्य दद्याच्च पादतीर्थप्रसादकौ ॥१२६॥

के बाएँ हाथ में स्थित इष्टलिङ्ग में शीघ्र प्रविष्ट करा दे और मूल षडक्षर मन्त्र का स्मरण करता रहे॥१२०॥ जैसी कला होती है, भाव उसी प्रकार का होता है। भाव की तरह मन होता है। मन के अनुरूप दृष्टि होती है और जहाँ दृष्टि पड़ती है, वहाँ का स्थल भी उसी प्रकार का हो जाता है॥१२१॥ घड़े के जल के ऊपर जिस प्रकार तेल की बूंद फैल जाती है, उसी प्रकार शाम्भवी कला देह, प्राण और आत्मा में व्याप्त होकर स्थित रहती है॥१२२॥ जलती कालाग्नि की दीप्ति के सदृश देदीप्यमान, करोड़ों बिजलियों की कान्ति के समान कान्ति वाली चित्-स्वरूपा परमा कला सूक्ष्म रूप में उस कला की शिखा के रूप में विराजमान रहती है॥१२३॥ जो परमा सूक्ष्म कला है, वही तत्त्वों का चरम बोध कराती है। उसी को विधिपूर्वक आकृष्ट करके इष्टलिङ्ग में स्थापित करे। साथ ही प्राणप्रतिष्ठा[३१] मन्त्र तथा मूल मन्त्र (ॐ नमः शिवाय) का पाठ करे॥१२४॥ गुरु शिव से प्रार्थना करे— "इस सुसंस्कृत लिङ्ग में सदा स्थिर रहिए, भक्त के शरीर से एकाकार होकर रहिए।" ॥१२५॥ शिष्य को आदेश दे कि वह भौतिक प्राणी मन बने, बल्कि लिङ्गप्राणी बने। बाद में शिष्य को चरणामृत और प्रसाद प्रदान करे॥१२६॥ करुणानिधि गुरु शिष्य से पुनः कहे—

---

३१. प्राणप्रतिष्ठाविधि के लिए दे. वीरशैवलिङ्गिब्राह्मणदशकर्मपद्धति, पृ० १०७-१०८ तथा वीरशैवाचारप्रदीपिका, पृ० ५६

भूयोऽप्युपदिशेच्छिष्यं सद्गुरुः करुणानिधिः।
माहेश्वरान् गुरुं लिङ्गं सम्यगर्चय नित्यशः ॥१२७॥
अष्टस्वावरणेषु त्वं श्रद्धां कुरु प्रयत्नतः।
प्रवर्तस्व महाबुद्धे पञ्चाचारेष्वपि क्रमात् ॥१२८॥

अङ्गलिङ्गप्रतिष्ठादीक्षा

इति सम्बोध्य भूयोऽपि प्राणानायम्य देशिकः।
अङ्गलिङ्गप्रतिष्ठाख्यां दीक्षां शिष्यस्य धीमतः ॥१२९॥
करिष्य इति सङ्कल्प्य लिङ्गं बद्ध्वा सुवाससा।
नमो ब्रह्मण इत्येतं धृतिमन्त्रं समुच्चरन् ॥१३०॥
शिष्यस्य कण्ठे हस्ते वा बध्नीयात् तदनन्तरम्।
गुर्वन्तेवासिनोर्वास आच्छादकमनूत्सृजेत् ॥१३१॥

शिष्यकर्तव्यनिर्देशः

गुरवेऽथ स शिष्यस्तु प्रणामत्रयमाचरेत्।
गोभूम्याद्यैर्महादानैर्देशिकं परितोषयेत् ॥१३२॥

प्रतिदिन माहेश्वरों की, गुरु की तथा इष्टलिङ्ग की भले प्रकार से अर्चना करो ॥१२७॥ प्रयत्न पूर्वक अष्टावरणों[३२] में श्रद्धा रखो और हे महामति शिष्य! क्रमशः पञ्चाचारों[३३] में भी श्रद्धा रखो ॥१२८॥

इस प्रकार शिष्य को सम्बोधित करने के बाद गुरु पुनः प्राणायाम करके बुद्धिमान् शिष्य को "मैं अङ्गलिङ्गप्रतिष्ठा दीक्षा ॥१२९॥ दूंगा" ऐसा सङ्कल्प करके इष्टलिङ्ग को अच्छे कपड़े में बांध कर "नमो ब्रह्मणे"[३४] इस धृति मन्त्र का उच्चारण करते हुए गुरु ॥१३०॥ शिष्य के कण्ठ या हाथ में बांध दे। इसके अनन्तर गुरु और शिष्य को ढांकने वाला कपड़ा हटा दे ॥१३१॥

अब वह शिष्य गुरु को तीन बार प्रणाम करे और गाय, भूमि आदि महादान से गुरु को संतुष्ट करे ॥१३२॥

---

३२. अष्टावरण—दे. सि. शि. स., पृ० ३६७। ये आठ आवरण हैं— गुरु, लिङ्ग, जङ्गम, पादोदक, प्रसाद, भस्म, रुद्राक्ष, मन्त्र।

३३. लिङ्गाचार, सदाचार, शिवाचार, भृत्याचार और गणाचार। विशेष द्र. सि. शि. स., पृ० ३८५-३९३

३४. ॐ नमो ब्रह्मणे धारणं मेस्त्वनिराकरणम्। धारयिता भूयासम्। कर्णयोः श्रुतम्। मा च्योढ्वम्। ममामुष्य ॐ (तै.आ. १०.९.१)

सद्योमुक्तिप्रदमेतद् व्रतम्

अयि प्रोक्तं मया देवि सद्योमुक्तिप्रदं व्रतम्।
शृणु वेदेष्वनन्तेषु विस्तृतेष्वागमेषु च।
नातः परतरं किञ्चिद्विद्यते मोक्षसाधनम्।।१३३।।
श्रौतस्मार्तसदाचारपरस्यानन्तजन्मसु ।
चित्तशुद्ध्या भवेद् भक्तिरन्यदेवसमाश्रया।।१३४।।
अन्यदेवार्चनव्यग्रचेतसोऽनन्तजन्मसु ।
देवान्तरप्रसादेन मयि भक्तिः प्रजायते।।१३५।।
मदर्चनपरस्यापि देहिनो बहुजन्मसु।
लभ्यते मत्प्रसादेन कस्याप्यन्तिमजन्मनः।
गुरुप्रसादात् परमं व्रतं पाशुपताभिधम्।।१३६।।

व्रतमहिमा

देशिकस्य प्रसादेन येन लब्धमिदं व्रतम्।
न तं मायाऽनुबध्नाति न स भूयोऽभिजायते।।१३७।।
गुरुबोधाग्निना दग्धा यस्य पाशा ह्यशेषतः।
तस्य निर्दग्धबन्धस्य पुनर्बन्धः कथं भवेत्।।१३८।।
गुरुकारुण्यपीयूषरसास्वादविनोदिनः ।
अमृतस्यास्य निकटं कथं मृत्युः प्रयास्यति।।१३९।।

हे देवि! मैंने तुरन्त मुक्ति देने वाला व्रत बतलाया। अनन्त वेदों तथा विस्तृत आगमों में भी इससे बढ़ कर कोई दूसरा मोक्ष का साधन नहीं है।।१३३।। जो लोग श्रौत और स्मार्त सदाचार में लगे रहते हैं, उनके चित्त की शुद्धि से अनन्त जन्मों में जाकर अन्य देवों के प्रति भक्ति उत्पन्न होती है।।१३४।। अन्य देवों की अर्चना में व्यस्त चित्त वाले व्यक्ति में अनन्त जन्मों में जाकर उन अन्य देवों की कृपा से शिव के प्रति भक्ति उत्पन्न होती है।।१३५।। मेरी अर्चना में लगे व्यक्ति को भी अनेक जन्मों के बाद मेरी कृपा से किसी अन्तिम जन्म में गुरु के प्रसाद से पाशुपत नामक परम व्रत का लाभ होता है।।१३६।।

देशिक गुरु के प्रसाद से जिसे यह व्रत प्राप्त हो गया है, उसे न तो माया बाँधती है और न ही वह पुनः जन्म ग्रहण करता है।।१३७।। जिसके सारे पाश गुरु द्वारा प्रदत्त ज्ञान रूपी अग्नि में जल चुके हैं, उस दग्धबन्धन वाले व्यक्ति को पुनः बन्धन कैसे बांधेगा?।।१३८।। गुरु की करुणारूपी अमृत के रस का आस्वादन लेने में आनन्द लेने वाले इस अमर शिष्य के पास मृत्यु कैसे आ सकती है?।।१३९।।

गुरुदत्तपरज्ञानप्रकाशविलसदृशः ।
भास्वतस्तस्य तु तमः सकाशं कथमेष्यति ।।१४०।।
अनवध्यस्मदानन्दतुन्दिलस्य महामतेः ।
विदुषो नित्यतृप्तस्य कथं शोको भविष्यति ।।१४१।।
श्रुतौ यस्य मदीयोक्तौ विश्वासः परमो भवेत् ।
स एवात्राधिकारी स्यान्नान्यो मोक्षाय कल्पते ।।१४२।।
इति देवि मया प्रोक्तं शाम्भवव्रतलक्षणम् ।
गोपनीयं प्रयत्नेन किमतः श्रोतुमिच्छसि ।।१४३।।

इति श्रीकारणागमे उत्तरभागे श्रीपार्वतीपरमेश्वरसंवादे क्रियापादे महापाशुपतविधिर्नाम प्रथमः पटलः ।।१।।

गुरु द्वारा प्रदत्त परम ज्ञान के प्रकाश से प्रकाशित दृष्टि वाले उस तेजस्वी व्यक्ति के पास अज्ञान का अन्धकार कैसे फटक सकता है? ।।१४०।। महामति, विद्वान्, सदा तृप्त रहने वाले उस शिष्य को कैसे शोक घेरेगा, जो शिव के असीम आनन्द से परिपूर्ण है? ।।१४१।। मेरे द्वारा उपदिष्ट श्रुति में जिसे पूरा विश्वास है, वही इस ज्ञान का अधिकारी हो सकता है। दूसरा कोई मोक्ष को नहीं पा सकता ।।१४२।। हे देवि! इस प्रकार मैंने शाम्भव व्रत का लक्षण बतलाया। इसको प्रयत्नपूर्वक गोपनीय रखना चाहिए। अब इसके बाद तुम क्या सुनना चाहती हो? ।।१४३।।

श्रीकारणागम के उत्तरभाग में श्रीपार्वतीपरमेश्वरसंवादरूपक्रियापादान्तर्गत महापाशुपतविधिनामक प्रथम पटल समाप्त हुआ ।।१।।



द्वितीयः पटलः

देव्युवाच

देवदेव महादेव जगदीश नमोऽस्तु ते।
एतदाकर्णनादस्मि कृतकृत्या महेश्वर॥१॥
अत्र मे जायते कश्चित् संशयः शशिशेखर।
तदपाकुरु कारुण्यात् प्राणेश शृणु मद्वचः॥२॥
ज्ञानादेव तु कैवल्यमिति प्रोक्तं त्वया पुरा।
एतद्व्रतेनैव भवेन्मुक्तिरित्युच्यते कथम्॥३॥
ज्ञानेन न विना मुक्तिर्यदि स्याद् देहधारिणाम्।
व्रतेनानुष्ठितेन स्यात् किं फलं ब्रूहि तत्त्वतः॥४॥

महादेव उवाच

ज्ञानादेव कैवल्यम्

साधु पृष्टं त्वया देवि वक्ष्याम्यवहिता शृणु।
ज्ञानादेव तु कैवल्यमिति सत्यं वचो मम॥५॥

देवी ने कहा—

हे देवाधिदेव, महादेव, जगदीश! मैं आपको नमन करती हूँ। हे महेश्वर! यह सुनकर मैं कृतकृत्य हुई॥१॥ हे शशिशेखर! यहाँ मुझे कुछ संशय हो रहा है, कृपा करके हे प्राणेश! उसे दूर करें। मेरी बात सुनें॥२॥ आपने पहले कहा था कि केवल ज्ञान से कैवल्य मिलता है। फिर आप कैसे कह रहे हैं कि इस व्रत से ही मुक्ति मिलती है?॥३॥ यदि देहधारी प्राणी को बिना ज्ञान के मुक्ति नहीं मिल सकती, तब ठीक-ठीक कहिए कि व्रत के अनुष्ठान से क्या फल प्राप्त होगा?॥४॥

महादेव ने कहा—

हे देवि! तुमने ठीक पूछा। सावधान होकर सुनो, मैं बतलाता हूँ। मेरा यह कथन सत्य है कि ज्ञान से ही कैवल्य प्राप्त होता है॥५॥ फिर भी बिना व्रत के ज्ञान

तथाऽपि ज्ञानसम्प्राप्तिर्व्रतेन न विना भवेत्।
ज्ञानोपदेशः कात्स्न्येंन व्रतेऽस्मिन्नुच्यते किल।
व्रतेनानेन न विना ज्ञानायाधिकृतो भवेत्॥६॥
अदीक्षासंस्कृते जन्तावपवित्रहृदाकुले।
उपदिष्टमपि ज्ञानं मरुवन्न प्ररोहति॥७॥
लब्धं कथमपि ज्ञानं लिङ्गनिष्ठाविवर्जिते।
न फलाय भवत्येव यथा सस्यमरक्षितम्॥८॥
दीक्षासंस्कृतिसंशुद्धे चित्ते जन्तोः समर्पितम्।
लिङ्गाङ्गसामरस्याख्यं मन्निष्ठागोपितं परम्।
भक्तिसिक्तं मम ज्ञानं मोक्षाय भवति ध्रुवम्॥९॥
मत्प्रसादेन न विना मुक्तिः संसृतिबन्धनात्।
मम ज्ञानेन न विना मत्प्रसादो भविष्यति॥१०॥

दीक्षाया ज्ञानसाधनत्वम्

मज्ज्ञानं न भवत्येव ह्यनया दीक्षया विना।
तस्मादियं महादीक्षा मोक्षदा निश्चिता खलु॥११॥

नहीं मिलता। इस व्रत में सम्पूर्ण ज्ञान का उपदेश बतलाया गया है। व्यक्ति इस व्रत के विना ज्ञान का अधिकारी नहीं हो सकता॥६॥ जो व्यक्ति दीक्षा से संस्कृत नहीं है और जिसका हृदय अपवित्रता से आकुल है, उसको दिया गया ज्ञान भी मरुभूमि की तरह फलीभूत नहीं होता॥७॥ इष्टलिङ्ग के प्रति निष्ठा से रहित व्यक्ति को किसी तरह ज्ञान प्राप्त भी हो जाए, तब भी वह ज्ञान उसी तरह फलवान् नहीं होता, जिस प्रकार सुरक्षा के बिना खेती॥८॥ दीक्षा संस्कार से शुद्ध प्राणी को दिया गया शिव का ज्ञान, जिससे इष्टलिङ्ग और शरीर के अङ्गों में समरसता[1] स्थापित होना बतलाया गया है, शिव के प्रति निष्ठा से जो रक्षित है तथा परम भक्ति द्वारा जो सिञ्चित है, वह अवश्य ही मोक्ष रूप फल प्रदान करता है॥९॥ शिव की कृपा के बिना संसार के बन्धन से मुक्ति नहीं मिलती। बिना शिव के ज्ञान से शिव की कृपा भी नहीं प्राप्त होती॥१०॥

इस दीक्षा के बिना शिव का ज्ञान हो ही नहीं सकता। अतः यह महादीक्षा निश्चय रूप से मोक्ष दायिनी होती है॥११॥ अतः इस दीक्षा को छोड़ कर मोक्ष

---

१. लिङ्गाङ्गसामरस्य = इष्टलिङ्ग के साथ साधक के शरीर को एकाकार मानना। दे. सि. शि. १५.७१।

तस्माद् दीक्षामिमां मुक्त्वा मोक्षकामः पथान्तरैः।
गच्छन्न मुञ्चते जन्तुः कल्पकोटिशतैरपि।
तस्मादसंशयं देवि व्रतमेतद् विमुक्तिदम्॥१२॥

देव्युवाच

देवात्र मम भूयोऽपि जायते संशयो महान्।
उक्तं हि भवता ,दीक्षा ज्ञानद्वारा विमोक्षदा।
तस्मात् सिद्धा हि दीक्षाया ज्ञानसाधनता परम्॥१३॥
विद्येत दीक्षितः कश्चित् सम्यग्ज्ञानविवर्जितः।
रागद्वेषानुबद्धश्च तस्य मुक्तिः कथं भवेत्॥१४॥
यदि तस्यापि मुक्तिः स्याद् ज्ञानापेक्षा निरर्थका।
चेद्विमुक्तिर्न तस्य स्याद् व्रतमेतन्न मोक्षदम्।
तमेतं संशयं छिन्धि करुणावरुणालय॥१५॥

महादेव उवाच

युक्तं पृष्टवती देवि तुष्टोऽस्मि तव भाषणात्।
रहस्यं कथयाम्यद्य त्वत्संशयनिवारकम्॥१६॥

चाहने वाला अन्य मार्गों द्वारा सैकड़ों - करोड़ों कल्पों में भी मुक्ति नहीं पा सकता। अतः देवि! इसमें संशय नहीं है कि यह व्रत मुक्ति प्रदान करता है॥१२॥

देवी ने कहा—

हे देव! यहाँ मुझे पुनः बड़ा संशय हो रहा है। आपने कहा था कि दीक्षा ज्ञान के द्वारा मोक्ष देती है। अतः सिद्ध हुआ कि दीक्षा ज्ञान का साधन है॥१३॥ परन्तु कोई दीक्षाप्राप्त व्यक्ति यदि ज्ञान से रहित हो और राग-द्वेष में लिप्त हो तो उसे मुक्ति कैसे मिलेगी?॥१४॥ यदि उसे भी मुक्ति मिल जाए तब ज्ञान की अपेक्षा करना निरर्थक होगा। परन्तु यदि उसे मुक्ति न मिले तब यह व्रत मोक्षदायक नहीं होगा। हे करुणा के सागर! इस संशय को दूर कीजिए॥१५॥

महादेव ने कहा—

हे देवि! तुमने ठीक ही पूछा। तुम्हारे प्रश्न से मैं तुष्ट हूँ। आज मैं तुम्हारे संशय को दूर करने वाला रहस्य बतलाता हूँ॥१६॥

शाम्भवव्रतस्य ज्ञानसाधनत्वम्

अज्ञस्य कुटिलस्यापि शाम्भवव्रतसेविनः।
प्राणोत्क्रमणवेलायां वाराणस्यामिव ध्रुवम् ॥१७॥
ज्ञानमावेदयिष्यामि मत्स्वरूपनिबोधकम्।
तेन वै मुच्यते जन्तुर्मत्प्रसादान्न संशयः ॥१८॥
गृह्णन् दीक्षामिमां वाथ वसन् वाऽऽनन्दकाननम्।
नरो यथेच्छाचारोऽपि न भीयान्मृत्युबन्धनात् ॥१९॥
न जन्मयातना जन्तोर्न च संयमयातना।
मज्ज्ञानविमुखस्यापि शाम्भवव्रतसेविनः ॥२०॥
महापातकयुक्तोऽपि दीक्षितः शुचितामियात्।
दीक्षितः पातकी चैत् स्याद् गच्छेद्भैरवयातनाम् ॥२१॥
स तथा भैरवीमुग्रां यातनामनुभूय च।
मदनुग्रहपात्रः स्यान्नपुनर्जन्मभाग्भवेत् ॥२२॥

अज्ञानी या कुटिल भी यदि शाम्भव व्रत का सेवन करता है तब उसके प्राणत्याग के समय, जैसे मैं वाराणसी में ज्ञान देता हूँ[२] उसी प्रकार ॥१७॥ उस व्यक्ति को अपने शिव के स्वरूप का बोध करानेवाला ज्ञान प्रदान करता हूँ। इसी के द्वारा मेरी कृपा से निस्संशय प्राणी मुक्त हो जाता है ॥१८॥ अथवा इस दीक्षा को ग्रहण करने वाला या आनन्दकानन वाराणसी में निवास करनेवाला व्यक्ति जैसा भी आचरण करे पर उसे मृत्यु का भय नहीं होता ॥१९॥ ऐसे प्राणी को जन्म की यातना नहीं मिलती, संयम करने का कष्ट नहीं झेलना पड़ता; शाम्भवव्रत का सेवन करने वाला व्यक्ति भले ही शिव-ज्ञान से विमुख हो ॥२०॥ महापातक[३] से युक्त व्यक्ति भी यदि दीक्षा प्राप्त कर लेता है तो वह पवित्र हो जाता है। यदि दीक्षित होकर पातक करता है, तब ऐसे व्यक्ति को भैरव यातना[४] झेलनी पड़ती है ॥२१॥ उस उग्र भैरवी यातना भैरवी यातना को भोगने के बाद व्यक्ति मेरी कृपा का पात्र हो जाता है और उसको

---

२. पुराणों में कहा गया है कि वाराणसी में प्राणत्याग करने वाले को स्वयं भगवान् शिव ज्ञानोपदेश अर्थात् संसार को तरने का उपाय बतलाते हैं, अतः वाराणसी में मृत्यु से मुक्ति प्राप्त होती है।

३. महापातक—द्र. सि. शि. ७.६०

४. भैरव यातना—कष्टपूर्ण भीषण यातना अथवा भैरव द्वारा दी गई यातना।

दीक्षितोऽदीक्षितो वाऽपि शैवाचारविदूषक:।
भक्तादिनिन्दकश्चेत् स्यान्नरकी कालमक्षयम्॥२३॥
तदुक्तं हि मया देवि दीक्षेयं मोक्षदेत्यहो।
नह्यत्र संशय: कार्यो मदुक्तौ गिरिकन्यके॥२४॥

देव्युवाच

ममापराध: क्षन्तव्यो मीढुष्टम नमोऽस्तु ते।
त्वयि प्रसन्ने जगति दुर्लभं किमु विद्यते॥२५॥
न कोऽपि विशयो मेऽस्ति भवदुक्तौ भवोद्भव।
श्रुतौ किमस्ति विशय: सा भवत्सूक्तिरेव हि॥२६॥
तथाऽप्यपृच्छं लोकानां संशयापजिहीर्षया।
संवृत्ता गतसंदेहा वृषवाह क्षमस्व माम्॥२७॥

महादेव उवाच

भवत्या: परिपृच्छन्त्या जनतानुजिघृक्षया।
नेह दोषोऽणुरप्यस्ति गुण एव महान् भवेत्।
परिपृच्छस्व किमपि वक्ष्यामि गिरिनन्दिनि॥२८॥

पुन: जन्म नहीं मिलता॥२२॥ दीक्षित हो या न दीक्षित हो, यदि वह व्यक्ति शैव आचार की निन्दा करता हो, भक्तों की निन्दा करता हो तो उसे अपरिमित काल पर्यन्त नरक भोगना पड़ता है॥२३॥ हे देवि! इसीलिए मैंने कहा था कि यह दीक्षा मोक्ष प्रदान करती है। हे पार्वति! मेरे इस कथन में संशय नहीं करना चाहिए॥२४॥

देवी ने कहा—

मेरे अपराध को आप क्षमा करें। हे मीढुष्टम[5] शिव आपको नमस्कार करती हूँ। आपके प्रसन्न होने पर जगत् में क्या दुर्लभ है?॥२५॥ हे भवरूपी संसार के उत्पत्तिकर्ता! आपके कथन में मेरे लिए कोई अवकाश नहीं है। श्रुति में क्या कोई कथनावकाश होता है? वह तो सदा सुन्दर कथन (सु उक्ति) बनी रहती है॥२६॥ मैं स्वयं सन्देहरहित हो गई हूँ, फिर भी लोगों के संशय को दूर करने की इच्छा से मैंने पूछा था। हे वृषवाहन! मुझे क्षमा करें॥२७॥

महादेव ने कहा—

लोगों के प्रति अनुग्रह करने की इच्छा से जो तुम प्रश्न कर रही हो उसमें अणुमात्र भी दोष नहीं है बल्कि इसमें बहुत गुण है। हे पर्वतपुत्रि! कुछ भी पूछो, मैं बतलाऊँगा॥२८॥

---

५. मीढुष्टम = शिव का एक नाम।

देव्युवाच

सेयं हि शाम्भवी दीक्षा ज्ञाननिष्ठाविधायिनी।
दृश्यते ज्ञाननिष्ठा हि यतेरेवोचिता भवेत्॥२९॥
नित्यनैमित्तिकमुखकर्मतत्परचेतसः।
कुटुम्बभरणव्यग्रमनसो गृहमेधिनः।
ज्ञाननिष्ठा कथं साध्या ब्रूहि मे करुणानिधे॥३०॥

महादेव उवाच

ज्ञाननिष्ठायां सर्वेषामधिकारः

मोक्षायाधिकृतो लोके यतिरेव कथं भवेत्।
ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वानप्रस्थो यतिस्तु वा॥३१॥
ब्राह्मणः क्षत्रियो वाऽथ वैश्यः शूद्रोऽन्त्यजोऽपि वा।
पुमान् नार्यथवा क्लीबः सर्वे मोक्षाधिकारिणः॥३२॥
मदनुग्रहपात्रो यः सर्वो मोक्षाय कल्पते।
मत्प्रसादविहीनाय व्रतमेतन्न रोचते॥३३॥
ज्ञानेन न विना मोक्षः सिद्ध्येत् केनापि सुव्रते।
ज्ञानं च न विनाऽनेन शाम्भवेन व्रतेन तु॥३४॥

देवी ने कहा—

यह शाम्भवी दीक्षा ज्ञान में निष्ठा देती है। देखा जाता है कि केवल यति के लिए ही ज्ञान में निष्ठा उचित होती है॥२९॥ नित्य, नैमित्तिक प्रमुख कर्म में तत्पर चित्त वाले, कुटुम्ब के भरण-पोषण में व्यग्र चित्त वाले गृहस्थ ज्ञान-निष्ठा को कैसे साधित कर पाएंगे? हे करुणानिधे! बतलाएँ॥३०॥

महादेव ने कहा—

संसार में केवल यति मोक्ष का अधिकारी हो यह कैसे हो सकता है? ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ या यति॥३१॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र या अन्त्यज; या पुरुष, नारी या नपुंसक सभी मोक्ष के अधिकारी हैं॥३२॥ जो कोई मेरे अनुग्रह का पात्र है वह सब मोक्ष प्राप्त करता है। मेरी कृपा से वंचित व्यक्ति को यह व्रत अच्छा नहीं लगता॥३३॥ हे सुव्रते! बिना ज्ञान के किसी प्रकार मोक्ष नहीं मिल सकता और बिना इस शाम्भव व्रत के ज्ञान नहीं प्राप्त हो सकता॥३४॥

व्रतमेतद् द्विविधम्

वैदिकं तान्त्रिकं चेति व्रतमेतद् द्विधा भवेत्।
द्विजानां वैदिकं प्रोक्तमन्येषां तान्त्रिकं स्मृतम्॥३५॥
नित्यं नैमित्तिकं वाऽपि क्रियते गृहमेधिना।
मदाराधनबुद्ध्या यत्कर्म तद् ज्ञानसाधनम्॥३६॥
गुरुजङ्गमलिङ्गार्चासाधनं यद् भवेद् भुवि।
कुटुम्बके विनिर्दिष्टं परमं मोक्षसाधनम्॥३७॥
तत्कर्म च कुटुम्बं वा न मुक्तिपथरोधकम्।
लिङ्गनिष्ठागरिष्ठस्य विदुषो गृहमेधिनः॥३८॥
मद्भक्तगणसंसेवानिर्भरानन्दवैभवम्।
गृहमेधीव सम्प्राप्तुं कथं पात्री भवेद्यतिः॥३९॥
विरक्तश्चेद्यतिर्भूयादविरक्तो गृही भवेत्।
यतिः सन्नविरक्तश्चेन्नरकी कालमक्षयम्॥४०॥
पुत्रदारानुषक्तः सन्नविरक्तश्चरन्नपि।
मन्निष्ठायुक्तचित्तश्चेद् गृही मुक्तो भवेद् ध्रुवम्॥४१॥

यह व्रत दो प्रकार का होता है— वैदिक और तान्त्रिक। वैदिक द्विजों, अर्थात् ब्रह्म, क्षत्रिय एवं वैश्य के लिए बतलाया गया है, दूसरों के लिए तान्त्रिक व्रत कहा गया है॥३५॥ नित्य या नैमित्तिक जो भी कर्म गृहस्थ मेरी आराधना की दृष्टि से करता है वह कर्म ज्ञान का साधन है॥३६॥ इस पृथ्वी पर गुरु, जङ्गम[६] या इष्टलिङ्ग की पूजा का जो भी साधन हो, वह उसके कारण पूरे कुटुम्ब के प्रति भी मोक्ष का साधन बन जाता है॥३७॥ इष्टलिङ्ग के प्रति निष्ठा से पूर्ण विद्वान् गृहस्थ के लिए वह कर्म और उसका कुटुम्ब उसके मोक्ष प्राप्ति के मार्ग में बाधक नहीं बनते॥३८॥ गृहस्थों को मेरे भक्तों की सेवा के अत्यधिक आनन्द का जो वैभव प्राप्त होता है, उसकी प्राप्ति का पात्र यति कैसे हो सकता है?॥३९॥ यदि विरक्त हो तो यति हो जाए, विरक्त न होने पर गृहस्थ बना रहे। यति होते हुए भी यदि व्यक्ति विरक्त न हो, तब वह कभी समाप्त न होने वाले काल पर्यन्त नरक में निवास करता है॥४०॥ पुत्र, स्त्री में अनुरक्त होते हुए विरक्त न भी हो तो वह उस तरह जीवन यापन करता हुआ मेरे प्रति निष्ठा से युक्त चित्त वाला व्यक्ति निश्चय ही मोक्ष पा लेता है॥४१॥

---

६. जङ्गम = जिसका पुर्नजन्म नहीं होता, मृत्यु जिसको रोकती नहीं, वही शिवस्वरूप यति जङ्गम कहलाता है। द्र. सि. शि. स., पृ० ३७६-३७८

ज्ञानं विमुक्तिदं प्रोक्तं नाश्रमो मोक्षसाधनम्।
ज्ञाननिष्ठा हि यस्य स्याच्छाम्भवव्रतपूर्विका।
कोऽपि वा भवताल्लोके स हि बन्धाद्विमुच्यते ।।४२।।
तस्मादिदं व्रतं प्रोक्तं परमं मोक्षसाधनम्।
इतोऽपि परिपृच्छस्व किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ।।४३।।

देव्युवाच

कथमत्र स्त्रीणामप्यधिकारः ?

व्रतमेतद्धि नारीणामनुष्ठेयं कथं भवेत्।
पुरस्ताद्वा परस्ताद्वा कर्तव्यं पाणिपीडनात् ।।४४।।
कथं पुरस्ताद् युज्येत स्त्रियः कर्मणि वैदिके।
अधिकारस्तु तद्योग्यविवाहासंस्कृतत्वतः ।।४५।।
परस्ताद् यदि गृह्येत भर्तृतस्त्वथवाऽन्यतः।
गृह्यते शाम्भवी दीक्षा भर्तृतश्चेद् गुरुः स हि ।।४६।।
गुरुः पिता भवेत्तस्य कथं पत्नी भवेदियम्।
अन्यतश्चेद्भवेत् तस्या अन्यशेषत्वमागतम्।
पत्युर्गुरोर्वा वचसि स्थातव्यमनया पुनः ।।४७।।

है। जो शाम्भव व्रत के बाद ज्ञान निष्ठा को प्राप्त करता है वह संसार में कोई भी हो बन्ध से मुक्त हो जाता है।।४२।। अतः इस व्रत को मोक्ष का परम साधन कहा गया है। इसके बाद बताओ कि तुम और क्या सुनना चाहती हो ? ।।४३।।

देवी ने कहा—

इस व्रत को स्त्रियाँ कैसे करें ? क्या वे विवाह के पहले या बाद में करें ? ।।४४।। कर्म की योग्यता का सम्पादन करने वाले विवाह संस्कार द्वारा संस्कृत न होने पर स्त्रियों को वैदिक कर्म का अधिकार विवाह के पूर्व कैसे उचित होगा[७] ? ।।४५।। यदि विवाह के बाद पति या अन्य से स्त्री शाम्भवी दीक्षा ग्रहण करे तब पति से दीक्षा लेने पर पति गुरु बन जाएगा।।४६।। गुरु बनने पर पति पिता समान होगा तब स्त्री पत्नी कैसे रहेगी ? यदि स्त्री पति से अन्य से दीक्षा ले तब स्त्री अन्य की पिछलग्गू (शेष) हो जाएगी, क्योंकि स्त्री को पति या गुरु के कहने पर चलना

---

७. स्त्री को विवाह के पूर्व वैदिक कर्म का अधिकार नहीं है, यह बात प्रमुख शास्त्रीय ग्रन्थों में उल्लिखित नहीं मिलती। यह लोकाचार हो सकता है।

सङ्कल्पाधिकृतिर्नास्ति योषितामिति कथ्यते।
तासामस्यां हि दीक्षायामधिकारः कथं भवेत्।।४८।।
अविश्रान्तमनीषाया गृहकृत्यैरनारतैः।
ज्ञाने लभेतावकाशः पतिमत्याः कथं प्रभो।।४९।।
लिङ्गनिष्ठापरायाः स्यात् कथं श्वश्र्वादिसेवनम्।
कथं वा भर्तृशुश्रूषा कथं पुत्रादिपालनम्।।५०।।
पतिरेव हि नारीणां परमं दैवतं भवेत्।
तासां कथं नु युज्येत देवतोपासनं वद।।५१।।

महादेव उवाच

स्त्रीणां दीक्षाग्रहणप्रकारः

व्रतमावश्यकमिदं कथ्यते योषितामपि।
अनुष्ठेयं परस्ताद्वै नियतं पाणिपीडनात्।।५२।।
ब्राह्मणीनां हि दीक्षाया ग्रहणं भर्तृतो वरम्।
भर्त्तर्यशक्ते ग्रहणमन्यतो वा विशिष्यते।।५३।।
अब्राह्मणीनां युज्येत भर्तृतो ग्रहणं नहि।
अब्राह्मणस्य पत्युर्वा नोपदेष्टृत्वमिष्यते।।५४।।

चाहिए।।४७।। कहा जाता है कि स्त्रियों को सङ्कल्प[८] लेने का अधिकार नहीं है। फिर उसको इस दीक्षा में कैसे अधिकार मिलेगा?।।४८।। निरन्तर घर के काम में लगी होने के कारण स्त्री की बुद्धि कभी शान्त नहीं रहेगी, जिससे हे प्रभो! पति-युक्त स्त्री को ज्ञान के लिए कैसे समय मिलेगा?।।४९।। इष्टलिङ्ग के प्रति निष्ठा में तत्पर स्त्री सास आदि की सेवा किस तरह कर पाएगी, अथवा पति की सेवा, पुत्र आदि का पालन कैसे कर सकेगी?।।५०।। पति ही स्त्रियों का परम आराध्य देवता है, फिर बताइए कि वह कैसे अन्य देवताओं की उपासना करेगी?।।५१।।

महादेव ने कहा—

यह व्रत स्त्रियों के लिए भी आवश्यक कहा गया है। विवाह के बाद ही निश्चयपूर्वक इसका अनुष्ठान करना चाहिए।।५२।। ब्राह्मणी स्त्रियों को पति से दीक्षा प्राप्त करना श्रेष्ठ है। यदि पति असमर्थ हो तब अन्य से दीक्षा लेना उचित होगा।।५३।। जो ब्राह्मणी नहीं है उसे पति द्वारा दीक्षा लेना उचित नहीं है। अब्राह्मण पति का व्रतोपदेशक होना मान्य नहीं है।।५४।। पत्नी द्वारा पति-गुरु में तथा पति द्वारा पत्नी-गुरु में

---

८. दे. ऊपर की टिप्पणी सं. ७

पत्न्या भर्तृगुरौ चैव भर्त्रा पत्नीगुरावपि।
गुरुदृष्टिर्विधेया स्यादन्यथा पततो ध्रुवम्॥५५॥
यतः पत्नी गुरोराज्ञाविधेया भर्तुरप्यतः।
तस्मादन्यगुरुत्वेऽपि न बाधा योषितो भवेत्॥५६॥
गुरुणा ह्युपदिष्टाया नान्यशेषत्वमिष्यते।
तदन्येन हि भुक्ताया एव स्यादन्यशेषता॥५७॥
निजभर्तुर्गुरुत्वेऽपि न दोषो योषितो भवेत्।
पितृता तस्य गौणी स्यान्नैव मुख्या भवेद्यतः॥५८॥
स एव माता च पिता देव इत्युपचर्यते।
न तावता भर्तृभार्यासम्बधो बाध्यते ध्रुवम्॥५९॥
सङ्कल्पाधिकृतिस्तासां नास्ति स्वर्ग्येषु कर्मसु।
सिद्धा विमोक्षाधिकृतिर्न निरोद्धुं हि शक्यते॥६०॥
यथाऽऽचार्ये पितरि च देवताबुद्धिरुच्यते।
तथैव भर्तरि प्रोक्ता न सा देवनिषेधिनी।
ततश्च देवतोपास्तिः शस्ता स्याद्योषितामपि॥६१॥

गुरु की दृष्टि रखनी चाहिए। अन्यथा वे दोनों निश्चय ही व्रत से च्युत हो जाते हैं॥५५॥ चूँकि पत्नी गुरु तथा पति की आज्ञा पालन करने वाली होती है, अतः स्त्री को दूसरे को गुरु मानने में बाधा नहीं होनी चाहिए॥५६॥ गुरु से उपदेश प्राप्त करने पर स्त्री अन्य की पिछलग्गू (शेष) नहीं मानी जाएगी। पति से अन्य के द्वारा भोगी जाने पर ही वह दूसरे की पिछलग्गू कही जाएगी॥५७॥ अपने पति को गुरु बनाने पर भी स्त्री को दोष नहीं होगा, क्योंकि पति का पिता-समान होना गौण है, मुख्य नहीं॥५८॥ उसी के प्रति माता, पिता, देव का उपचार होता है। इतने से पति-भार्या का सम्बन्ध निश्चय ही बाधित नहीं होगा॥५९॥ स्वर्ग के लिए उपयुक्त कार्यों में स्त्री को सङ्कल्प करने का अधिकार नहीं है। पर मोक्ष का अधिकार तो सिद्ध है, उसे नहीं रोका जा सकता॥६०॥ जैसे आचार्य और पिता को देवता समझने की बात कही जाती है उसी तरह पति के बारे में भी कहा गया है। इससे देवों का निषेध नहीं होता। अतः स्त्रियों को भी देवता की उपासना करना उचित है॥६१॥

पतिपत्नीत्वसम्बन्धो न नित्यः कल्पितो हि सः।
नारीनरत्वादिकमप्यैहजन्मिकमीरितम् ॥६२॥
नैव स्त्री न पुमानेष नैव चायं नपुंसकः।
यद्यच्छरीमाधत्ते तेन तेन स लिप्यते॥६३॥
नारीत्वमैहिकं वाऽपि भार्यात्वं कल्पितं तथा।
निरुन्धतः कथं तन्व्याः पन्थानं मोक्षगामिनम्॥६४॥
देववद्भावितो वाऽपि गुरुवत्सेवितोऽपि वा।
मदुपास्तिं विना मूर्खस्तारयेत् स कथं सतीम्॥६५॥

व्रतमिदं नारीणामप्यनुष्ठेयम्

संसरन् भवकान्तारे निमज्जन् दुःखवारिधौ।
अतीर्णस्तु स्वयं मूर्खस्तारयेत् स कथं सतीम्।
तस्मादवश्यं नारीणामनुष्ठेयं व्रतं भवेत्॥६६॥
अदीक्षासंस्कृता नारी दीक्षितस्य निजेशितुः।
न योग्या परिचर्यायै दीक्षिणीया सती ततः॥६७॥
अदीक्षासंस्कृता नारी यं यं पाकं करोति च।
स स नैवार्हति किल पाको मह्यं निवेदितुम्॥६८॥

पति-पत्नी का सम्बन्ध नित्य नहीं है, वह कल्पित है। नारी या नर होना भी इस जन्म की बात कही गई है॥६२॥ यह आत्मा न स्त्री है, न पुरुष है और न नपुंसक[१]। जिस-जिस शरीर को यह धारण करती है, आत्मा उस-उसमें लिप्त हो जाती है॥६३॥ नारी होना इस जन्म की बात है, पत्नी बनना भी इसी प्रकार कल्पित है। ये बातें (नारीत्व, पत्नीत्व) स्त्री को मोक्ष मार्ग से कैसे रोक सकती हैं?॥६४॥ देव की तरह पूजा जाने पर या गुरु की तरह सेवित होने पर भी मूर्ख व्यक्ति बिना स्वयं शिव की उपासना किए कैसे सती स्त्री को संसार से पार मोक्ष, तक ले जा सकता है?॥६५॥

स्वयं जन्मों के जंगल में घूमता हुआ, दुःख के समुद्र में डूबता हुआ मूर्ख व्यक्ति बिना स्वयं पार लगे सती स्त्री को कैसे पार लगाएगा। अतः स्त्री द्वारा इस व्रत का स्वयं अनुष्ठान करना चाहिए॥६६॥ जो नारी दीक्षा से संस्कृत नहीं है वह अपने दीक्षित पति की सेवा करने के योग्य नहीं है। अतः सती स्त्री को दीक्षा देनी चाहिए॥६७॥ अदीक्षित नारी द्वारा बनाया गया भोजन शिव को निवेदित करने के योग्य नहीं है।

---

१. श्रीमद्भागवत में इसी तरह की उक्ति—"न स्त्री न षण्ढो न पुमान् न जन्तुः"।

अदीक्षासंस्कृता नारी परिस्पृशति यज्जलम्।
अभिषेकक्रियादीनां मम नार्हति तज्जलम्॥६९॥
पारतन्त्र्यं हि नारीणामुक्तं स्वर्ग्येषु कर्मसु।
ऐहिकेष्वपि मोक्षार्थे न स्वातन्त्र्यं विहन्यते।
तस्मादवश्यं नारीणां दीक्षा देया बुधोत्तमैः॥७०॥
लिङ्गनिष्ठाऽविरोधेन स्वकृत्यान्यनुपालयेत्।
न दुष्यते ततो नारी भर्तृशुश्रूषणादिषु॥७१॥
पतिं परिचरन्ती च श्वश्र्वादीन् पोषयन्त्यपि।
पालयन्त्यपि पुत्रादीन् लिङ्गनिष्ठां न विस्मरेत्॥७२॥
यथैव बालापत्यायाः कुर्वन्त्या भवनक्रियाः।
बालायत्तं यथा चित्तं दीक्षितायास्तथोचितम्।
ततो न गृहकृत्यानि बाधन्ते मदुपासनाम्॥७३॥
लिङ्गनिष्ठापरा भूत्वा मन्निष्ठायुक्तचेतसः।
पत्युः संसेवनाद् भर्त्री मत्सायुज्यं गमिष्यति॥७४॥

देव्युवाच

रजःप्रभवदुष्टायाः प्रसवाशौचसंगतेः।
लिङ्गस्पर्शनपूजाद्याः करणीयाः कथं प्रभो॥७५॥

के योग्य नहीं है॥६८॥ अदीक्षित नारी द्वारा छुया गया जल शिव के अभिषेक आदि कर्म के योग्य नहीं होता॥६९॥ स्वर्गोचित कर्म में नारी परतन्त्र कही गई है। यही बात ऐहलौकिक कर्मों पर भी लागू होती है। पर मोक्ष के निमित्त किए गए कर्म के प्रति उसकी स्वतन्त्रता का नाश नहीं होता। अतः विद्वान् आचार्य द्वारा नारी को दीक्षा देनी ही चाहिए॥७०॥ इष्टलिङ्ग के प्रति निष्ठा का विरोध किए बिना अपने कर्मों का यदि नारी पालन करती है तब पति की शुश्रूषा आदि के लिए उसको दोष नहीं लगता॥७१॥ पति की परिचर्या, सास की देख-भाल आदि कर्म करती हुई, पुत्र को पालती हुई भी स्त्री इष्टलिङ्ग के प्रति निष्ठा को न भूले॥७२॥ जैसे छोटे बच्चे वाली मकान आदि बनाने में लगी स्त्री का मन अपने बच्चे पर लगा रहता है, उसी तरह दीक्षित स्त्री के लिए भी उचित है । इससे घर के काम-काज से शिव की उपासना बाधित नहीं होगी॥७३॥शिव के प्रति निष्ठा से युक्त चित्तवाले पति की इष्टलिङ्ग के प्रति निष्ठा रखती हुई पत्नी सेवा करे। तब वह स्त्री शिव के सायुज्य को प्राप्त हो जाएगी॥७४॥

देवी ने कहा—

हे प्रभो! मासिक धर्म में रक्त आने के कारण दूषित, बालक के प्रसव के अशौच से युक्त स्त्री इष्टलिङ्ग का स्पर्श, पूजन आदि कैसे करे?॥७५॥

महादेव उवाच

अर्चा ह्यवसराभिख्या गृहिणीनां तु सम्मता।
न मन्त्रा वैदिका योग्या योषितां तान्त्रिकाः स्मृताः ॥७६॥

रजोदोषादीनामप्रवृत्तिः

दीक्षापवित्रिताङ्गत्वाद् लिङ्गस्पर्शो न दुष्यते।
रजोवत्त्वादिकालेषु कार्या पूजा प्रयत्नतः।
प्रसवप्रमुखापत्सु पूजाभङ्गो न दोषदः ॥७७॥

देव्युवाच

वैदिकी वाऽथवा दीक्षा तान्त्रिकी योषितां भवेत्।
वैदिकी यदि पूजायां मन्त्राः स्युस्तान्त्रिकाः कथम् ॥७८॥
तान्त्रिकी यदि दम्पत्योर्दीक्षाभेदः परस्परम्।
सिद्धस्तयोः कथं नु स्यात् साङ्गत्यं सर्वकर्मसु।
तमेनं संशयं छिन्धि करुणावरुणालय ॥७९॥

महादेव उवाच

दीक्षे ह्युभे विकल्पेन युज्येते द्विजयोषिताम्।
तान्त्रिक्यामधिकारः स्याद्धर्तुं स्त्रीणां स्वतन्त्रतः ॥८०॥

महादेव ने कहा —

अवसरा नामक पूजा गृहिणियों के लिए मान्य है। वैदिक मन्त्र की स्त्री अधिकारी नहीं है। उनके लिए तान्त्रिक मन्त्र बतलाए गए हैं ॥७६॥

दीक्षा द्वारा अङ्गों के पवित्र हो जाने के कारण लिङ्ग स्पर्श से दूषित नहीं होता, अतः मासिक धर्म आदि के काल में प्रयत्न पूर्वक पूजा करनी चाहिए।[१०] प्रसव आदि आपत्काल में पूजा न करने से दोष नहीं लगता ॥७७॥

देवी ने कहा —

वैदिकी या तान्त्रिकी दीक्षा स्त्रियों को दी जाती है, पर यदि उसे वैदिकी दीक्षा दी गई हो, तब पूजा में तान्त्रिक मन्त्रों का प्रयोग कैसे किया जाएगा ? ॥७८॥ यदि तान्त्रिकी दीक्षा दी गई हो, तब पति-पत्नी की परस्पर दीक्षाओं में भेद हो जाएगा। फिर सारे कर्मों में सङ्गति कैसे होगी ? हे करुणासागर ! इस संशय को दूर करें ॥७९॥

महादेव ने कहा —

द्विज स्त्रियों के लिए दोनों दीक्षाओं का विकल्प ठीक है। पर स्त्रियों को स्वतन्त्र रूप से तान्त्रिक दीक्षा का ही अधिकार है ॥८०॥

---

१०. द्र. सि. शि. ९. ४४-४५

वैदिकतान्त्रिकदीक्षाविकल्पः

पुमांसमग्रतः कृत्वा वैदिक्यां परतन्त्रतः।
दीक्षाभेदस्तु दम्पत्योर्न साङ्गत्यनिरोधकः ॥८१॥
यथाधिकारसंप्राप्तः स्त्रीपुंसोर्धर्मभेदवत्।
सर्वमुक्तं समासेन किमतः श्रोतुमिच्छसि ॥८२॥

इति श्रीकारणागमे उत्तरभागे पार्वतीपरमेश्वरसंवादे क्रियापादे शाम्भवदीक्षामाहात्म्यकथनं नाम द्वितीयः पटलः ॥२॥

पुरुष को आगे करके स्त्री का वैदिक दीक्षा में परतन्त्र होना पति-पत्नी की दीक्षा में भेद का कारण होता है। यह सङ्गति का बाधक नहीं है॥८१॥ स्त्री और पुरुष को धर्म के भेद के अनुसार यथोचित अधिकार मिलते हैं। मैंने सभी बातें तुमको संक्षेप में बतला दीं। अब आगे तुम क्या सुनना चाहती हो ? ॥८२॥

श्रीकारणागम के उत्तरभाग में श्रीपार्वतीपरमेश्वरसंवादरूपक्रियापादान्तर्गत शाम्भवदीक्षामाहात्म्यकथन नामक द्वितीय पटल समाप्त हुआ ॥२॥



तृतीयः पटलः

देव्युवाच

देवदेव महादेव जगदीश नमोऽस्तु ते।
शाम्भवव्रतिनां नित्यमाह्निकं ब्रूहि मेऽधुना ॥१॥

महादेव उवाच

शाम्भवव्रतिनामाह्निकम्

ब्राह्मे मुहूर्ते मद्भक्तो बुद्ध्यमानो नगात्मजे।
नेत्रयोः स्पर्शयन्निष्टलिङ्गं मामनुसंस्मरेत् ॥२॥
गुरूपदिष्टमार्गेण द्वादशान्तेऽथवा हृदि।
दिव्यरूपमरूपं वा चिन्तयेन्मामनन्यधीः ॥३॥
धर्मानर्थांश्च तत्क्लेशान् दिनकृत्यं च चिन्तयेत्।
तथा चत्वारि कर्माणि सन्ध्यायां न समाचरेत्।
भुक्तिं च कामिनीसक्तिमधीतिं सुप्तिमेव च ॥४॥
उदयत्यस्तमयति रवौ सुप्यति चेन्नरः।
प्राणानायम्य च जपेन्मूलमष्टोत्तरं शतम् ॥५॥

देवी ने कहा—

हे देवाधिदेव महादेव! जगदीश! आपको मैं नमन करती हूँ। अब शाम्भव व्रत करने वालों का नित्य करणीय दैनिक कर्म बतलाइए ॥१॥

महादेव ने कहा—

हे पर्वतपुत्रि! मेरा भक्त ब्राह्म मुहूर्त में उठकर आखों से इष्टलिङ्ग का स्पर्श कराते हुए मेरा स्मरण करे ॥२॥ गुरु द्वारा बताई गई विधि से द्वादशान्त[1] या हृदय में दिव्य रूपधारी या अरूपी शिव का अनन्य चित्त होकर स्मरण करे ॥३॥ धर्म, अर्थ और उनसे सम्बन्धित क्लेशों का तथा दिन में किए जाने वाले कार्यों का चिन्तन करे। संध्या के समय भोजन, स्त्री के साथ सहवास, अध्ययन और निद्रा इन चार कर्मों को न करे ॥४॥ यदि सूर्य के उदय या अस्त होते समय व्यक्ति सोता

---

१. द्वादशान्त—द्र. वीरशैवाचारप्रदीपिका, पृ० १०४ पर मराठी अनुवाद में दिया गया स्पष्टीकरण। वहाँ शङ्करसंहिता के निर्देश से कहा गया है कि अनाहत चक्र हृदय स्थान में बारह दल वाले कमल की बारहवीं कर्णिका के बाद परम शिव तत्त्व का निवास है।

मद्भक्तं भस्मरुद्राक्षं मां च विल्वमहीरुहम्।
प्रातःकाले तु यः पश्येत् सोऽभीष्टं समवाप्नुयात् ॥६॥
पाषण्डं भविनं व्रात्यं याचकं देवनिन्दकम्।
प्रातःकाले तु यः पश्येत् सोऽनिष्टं समवाप्नुयात् ॥७॥

शौचविधिः

ततो ग्रामाद् बहिर्यायादाग्नेर्यीं विदिशं नरः।
शरक्षेपमितां तत्र जलपात्रं निधाय वै ॥८॥
निवीतं शिवसूत्रं च मूर्ध्नि विन्यस्य वाससा।
शिरः प्रावृत्य नोर्ध्वं च नाधश्चैव विलोकयन् ॥९॥
सोममग्निमथादित्यं कुर्वन्नाभिमुखं द्विजः।
ततश्च विसृजेन्मूत्रं पुरीषं च समाहितः ॥१०॥
अतो मृदा वारिणा च भावशुद्धिसमन्वितः।
शौचं तु यत्नतः कुर्यादन्यथा निष्फलाः क्रियाः ॥११॥
अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा।
यः स्मरेद्वै विरूपाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः ॥१२॥

है, तब उसे प्राणायाम करके एक सौ आठ बार मूल मन्त्र (पञ्चाक्षर मन्त्र) का जप करना चाहिए॥५॥ मेरे भक्त को, रुद्राक्ष को, मुझ शिव को और विल्व वृक्ष को जो प्रातः काल देखता है वह वांछित फल पाता है॥६॥ पाखण्डी, इष्टलिङ्ग से विरहित, भीरु, पतित, मांगनेवाला, देव की निन्दा करने वाला – इनको जो व्यक्ति प्रातः देखे उसे अनिष्ट प्राप्त होता है॥७॥

इसके बाद गांव के बाहर आग्नेय कोण की ओर जितनी दूर बाण फेंका जा सकता है, उतनी दूर जाने पर जल से भरा पात्र रख कर॥८॥ कण्ठ में लटकते (निवीत) उपवीत और शिवसूत्र को सिर पर रख कर कपड़े से ढांक ले और न ऊपर, न नीचे देखता हुआ॥९॥ चन्द्रमा, अग्नि और सूर्य की ओर मुंह न करे। फिर मूत्र और मल का एकाग्र चित्त से त्याग करे॥१०॥ भाव शुद्धि से युक्त होकर मिट्टी और जल के द्वारा प्रयत्न पूर्वक स्वच्छ हो जाए। अन्यथा उसकी सारी क्रियाएँ निष्फल हो जाएंगी॥११॥ अपवित्र या पवित्र किसी अवस्था में स्थित जो व्यक्ति विरूपाक्ष[२] शिव का स्मरण करता है, वह बाहर और भीतर से शुद्ध हो जाता है॥१२॥

२. तीन नेत्रों के होने से शिव विरूप से दिखाई देते हैं, अतः उन्हें विरूपाक्ष कहते हैं।

शौचं विधाय विधिवद्धस्तपादं विशोध्य च।
जलं मह्यं समर्प्यैव गण्डूषान् विसृजेत्तदा॥१३॥
संबद्धशिख आसीनो वाङ्मनःकायसंयुतः।
कृत्वोपवीतं सव्यांसे तत आचमनं चरेत्॥१४॥
अन्तर्जानुकरो भूमिमधः कायं तथा स्पृशन्।
उदङ्मुखस्तु तीर्थेन ब्राह्मेणोपस्पृशेज्जलम्॥१५॥
सुप्ते क्षुते च निष्ठीवे परिधानेऽश्रुनिर्गमे।
कृत्वा मूत्रपुरीषे च शौचार्थी समुपस्पृशेत्॥१६॥
उपस्पर्शे तथा स्नाने नियतं सर्वकर्मसु।
कुशग्रहः प्रशस्तः स्यान्न शस्तः पैतृके भवेत्॥१७॥

दन्तधावनम्

आचम्य प्राङ्मुखो नित्यमाचरेद् दन्तधावनम्।
मधुरित्यादिमन्त्रेण शाखां समभिमन्त्र्य च॥१८॥

विधिपूर्वक पवित्र होकर, हाथ-पैर धोकर पहले जल शिव को निवेदित करके बाद में कुल्ले करे॥१३॥ शिखा बांध कर वाणी, मन और शरीर को वश में करके बैठे। यज्ञोपवीत को दाहिने कंधे के नीचे लटकाकर आचमन करे॥१४॥ हाथों को जाघों के बीच में रखकर भूमि तथा शरीर के निचले भाग का स्पर्श करते हुए उत्तराभिमुख होकर ब्राह्म तीर्थ[३] से जल का आचमन करे॥१५॥ सोने के बाद, भोजन के बाद, थूकने के बाद, कपड़े पहनने के बाद, मूत्र और मल का त्याग करने के बाद पवित्रता चाहने वाला व्यक्ति आचमन करे॥१६॥ आचमन करते समय, स्नान के समय, सारे कार्यों में यह नियत है कि कुश का ग्रहण करना श्रेष्ठ है, पर पैतृक कार्यों में यह कुश-ग्रहण ठीक नहीं है[४]॥१७॥

आचमन करके पूर्वाभिमुख होकर प्रतिदिन मधु[५] आदि मन्त्र से वृक्ष की शाखा को अभिमन्त्रित करके उससे दन्तधावन करे॥१८॥ हे वनस्पति! तुम आयु, यश,

---

३. ब्राह्म तीर्थ = अंगुष्ठ का मूल भाग।

४. सामान्य श्राद्धादि पैतृक कर्म में कुशग्रहण वैदिक कर्मकाण्ड में विहित माना गया है।

५. मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवो माध्वीर्नः सन्त्योषधीर्मधु नक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिवं रजः। मधु द्यौरस्तु नः पिता मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँ अस्तु सूर्यः। माध्वीर्गावो भवन्तु नः॥ (शु. य. १३. २७-२९)

आयुर्बलं यशो वर्चः प्रजाः पशुवसूनि च।
ब्रह्म प्रज्ञां च मेधां च त्वं नो देहि वनस्पते।
इति सम्प्रार्थ्य मन्त्रेण धावयेच्छाखया तथा॥१९॥
सर्वे कण्टकिनः शस्ताः क्षीरिणो दन्तधावने।
न विल्वशाखया कुर्याद् दन्तशुद्धिं कदाचन॥२०॥

स्नानकर्म

दन्तशुद्धिं विधायाथ प्रातःस्नानं समाचरेत्।
महानद्यो देवखातास्तटाकाश्च सरांसि च।
गर्तप्रश्रवणदीनि शस्तानि स्नानकर्मणि॥२१॥
रूपं तेजो बलं शौचमायुर्धृतिररोगता।
मेधा दुःस्वप्ननाशश्च गुणाः स्नानस्य कीर्तिताः॥२२॥
मदालयसमीपे तु यत्तोयं परितिष्ठते।
शिवगङ्गेति विज्ञेया तत्र स्नात्वा लभेत माम्॥२३॥

मलस्नानं मन्त्रस्नानं च

नद्यादिकान् समागम्य स्नानं कुर्याद्विशेषतः।
मलस्नानमिदं प्रोक्तं मन्त्रस्नानमथ शृणु॥२४॥

वर्चस्, सन्तति, पशु, धन, ज्ञान (ब्रह्म), प्रज्ञा, मेधा हमें दो। इस प्रकार प्रार्थना करके मन्त्र तथा वृक्ष की टहनी से दातों को शुद्ध करे॥१९॥ सभी कांटे वाले, दुग्धयुक्त वृक्ष दन्तधावन के लिए प्रशस्त माने गए हैं। पर विल्व की टहनी से दातों को कभी न शुद्ध करे॥२०॥

दन्तधावन करके प्रातः स्नान करे। बड़ी नदियाँ, नैसर्गिक जलाशय, तालाब, सरोवर, गड्ढे से निकल कर बहने वाले झरने स्नान कर्म में प्रशस्त माने गए हैं॥२१॥ रूप, तेज, बल, पवित्रता, आयु, धैर्य, आरोग्य, मेधा, दुःस्वप्न का नाश– स्नान के गुण बतलाए गए हैं, अर्थात् स्नान से इनका लाभ मिलता है॥२२॥ शिव के आलय के समीप जो जल होता है, उसे शिवगङ्गा समझना चाहिए। उसमें स्नान करके व्यक्ति शिव को प्राप्त करता है॥२३॥

नदी आदि के पास जाने पर विशेष रूप से स्नान करना चाहिए। इसको मलस्नान कहते हैं। अब मन्त्रस्नान के बारे में सुनो॥२४॥ सङ्कल्प, सूक्त का पाठ, मार्जन, अघमर्षण, देवताओं का तर्पण ये स्नान के पांच अंग कहे गये हैं॥२५॥ मछली, मेढक, सर्प आदि अनेक जल-जन्तुओं से नित्य सेवित जल दूषित हो जाता है। उस दोष का शमन करने के लिए शिवतीर्थ का आवाहन करे॥२६॥ यह एक हाथ

सङ्कल्प: सूक्तपठनं मार्जनं चाघमर्षणम्।
देवतातर्पणं चैव स्नानं पञ्चाङ्गमुच्यते॥२५॥
मत्स्यमण्डूकसर्पाद्यैरनेकैर्जलजन्तुभि:।
सेवितं तु जलं नित्यं तस्माद् दुष्टं भवेदत:।
तद्दोषशमनार्थं तु शिवतीर्थं प्रकल्पयेत्॥२६॥
हस्तमात्रप्रमाणेन परितश्चतुरश्रकम्।
हुंफडन्तेन चास्त्रेण मृदं गृह्णीत साधक:।
सद्येन स्थापयेन्मन्त्री वामदेवेन सेचयेत्॥२७॥
अघोरेण विशोद्ध्यचैव पुरुषेण त्रिभागकम्।
पूर्वस्मिन् दक्षिणे चैव तथा चैवोत्तरे क्षिपेत्॥२८॥
ईशानेन तु मन्त्रेण चेकैकमभिमन्त्रयेत्।
अस्त्रं ब्रह्मशिवं जप्त्वा पूर्वादि क्रमशो न्यसेत्॥२९॥
अस्त्रजप्तं तु यद्भागं दशदिक्षु विनिक्षिपेत्।
शिवजप्तं तु यद्भागं तीर्थमध्ये विनिक्षिपेत्॥३०॥
फट्कारेणास्त्रमन्त्रेण तथा नाराचमुद्रया।
जले सूक्ष्माश्च ये दोषास्तेषामुच्चाटनं भवेत्॥३१॥

के प्रमाण का हो और चारों ओर से चौरस हो। साधक हुं फट् अस्त्र से मिट्टी ग्रहण करे, सद्योजात[६] मन्त्र से स्थापना करे, मन्त्रवान् होकर वामदेव[७] मन्त्र से सींचे॥२७॥ अघोर मन्त्र[८] से शोधित करने के बाद इस मिट्टी के तीन भाग करे और उनको पूर्व, दक्षिण और उत्तर में रख दे॥२८॥ प्रत्येक भाग को ईशान मन्त्र[९] से अभिमन्त्रित करे। ब्रह्मशिव[१०] अस्त्र का जप करके पूर्वादि दिशाओं में क्रम से रखे॥२९॥ अस्त्र से जपे भाग को दसो दिशाओं में बिखेर दे। शिव के मन्त्र से जपे भाग को तीर्थ के बीच में डाल दें॥३०॥ फट्कार रूपी अस्त्र-मन्त्र से तथा नाराच[११] मुद्रा से जल गत सूक्ष्म दोषों का उच्चाटन हो जाता है॥३१॥ ब्रह्म मन्त्र से जपे मिट्टी के आधे

---

६ - ९ दे. प्रथम पटल टिप्पणी १२-१६

१०. ब्रह्मशिवास्त्र = ॐ ह्व: अनन्तशक्तिधाम्ने ज्योतीरूपाय शिवायास्त्राय फट् (वीरशैवाचारप्रदीपिका, पृ० ५५)

११. दोनों हाथों की ऊँगलियों से नीचे की ओर बाण छोड़ने की समान आकृति स्वरूप मुद्रा।

ब्रह्मजप्तस्य चार्धेन चात्मनोऽङ्गानि कुण्ठयेत्।
शिरो वक्त्रं च हृदयं पादौ गुह्यं च भागशः॥३२॥
शेषार्धेनोपसंस्पृश्य स्नात्वाऽद्भिस्तु पुनः पुनः।
उपस्पृश्य तथा स्नायाच्छिवतीर्थस्य मध्यतः॥३३॥
शिवब्रह्माङ्गविद्याङ्गैः स्नानं कृत्वा विचक्षणः।
पञ्चब्रह्मशिवाङ्गैश्च त्रिः पठेदघमर्षणम्॥३४॥
ततः शिवात्मकैर्मन्त्रैस्तोयं कृत्वा शिवात्मकम्।
मार्जनं संहितामन्त्रैस्तत्तोयेन समाचरेत्॥३५॥
अस्त्रेण मन्त्रितं तोयं वामनासाग्रमानयन्।
इडयान्तर्गतं तेन दग्धमेनो विचिन्तयेत्॥३६॥
बहिर्गतं पिङ्गलया भावयन् दक्षिणे करे।
धृत्वा जलं तत्र पापपूरुषं भावयेत्ततः॥३७॥

भाग को अपने अङ्गों सिर, मुख, हृदय, दोनों पैर और गुह्यांङ्ग में थोड़ा-थोड़ा लगा दे॥३२॥ बाकी के आधे भाग को चूमकर बार-बार पानी से स्नान करे, फिर आचमन करके शिवतीर्थ के बीच में स्नान करे॥३३॥ शिवाङ्ग ब्रह्माङ्ग और विद्याङ्ग से विद्वान् साधक स्नान करके पञ्चब्रह्म और शिवाङ्गों से तीन बार अघमर्षण[१२] का पाठ करे॥३४॥ इसके बाद शिवात्मक मन्त्रों[१३] से जल को शिवात्मक बनाकर उस जल से संहिता मन्त्रों[१४] के साथ मार्जन करे॥३५॥ अस्त्र द्वारा अभिमन्त्रित जल को दाहिने हाथ में लेकर बाईं नाक के सामने लाते हुए भावना करे कि वह जल इडा[१५] नाडी में स्थित पाप का नाश कर रहा है॥३६॥ फिर जल को दाहिने हाथ में लेकर दाहिनी नासिका के बाहर रख कर भावना करे कि पाप रूपी पुरुष पिङ्गला[१६] नाडी के द्वार से बाहर आ गया है॥३७॥ फिर अपने बाएँ भाग में

---

१२. अघमर्षण मन्त्र = ऋतं च सत्यं चाभीद्धात् तपसोऽध्यजायत। ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः॥ समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत। अहोरात्राणि विदधद् विश्वस्य मिषतो वशी॥ सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयद्दिवं च पृथिवीञ्चान्तरिक्षमथो स्वः॥ (ऋ. १०.१९०.१-३)

१३. वह मन्त्र जो शिवरूप हो। संभवतः पञ्चाक्षर मन्त्र! अथवा अन्य मन्त्र जिसमें शिव नाम हो, जैसे शिवेन वचसा त्वा आदि।

१४. मार्जनमन्त्र, संहिता में पठित आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन। महे रणाय चक्षसे॥ यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः। उशतीरिव मातरः॥ तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ। आपो जनयथा च नः॥ (शु. य. ३६. १४-१६)

१५. शरीर के बाईं ओर मेरुदण्ड से ऊपर की ओर जाने वाली श्वासवहा नाडी।

१६. शरीर के दाहिनी ओर मेरुदण्ड के साथ ऊपर की ओर जानेवाली श्वासवहा नाडी।

वामभागे वज्रशिलां ध्यात्वा तत्र क्षिपेज्जलम्।
चूर्णितं भावयेत् पापनरमित्यघमर्षणम्॥३८॥
देवादींस्तर्पयेद् विद्वान् मूलमन्त्रजपेन च।
देवं मां मद्गणांश्चैव तर्पयेच्छुद्धमानस:।
फट्कारेणास्त्रमन्त्रेण शिवतीर्थं च संहरेत्॥३९॥

भस्मस्नानम्

प्रात:स्नाने मृत्तिकया नानुलिम्पेच्छरीरकम्।
ततस्तु धौतवसने धृत्वा त्यक्त्वाऽऽर्द्रवाससी॥४०॥
इष्टलिङ्गं करे न्यस्य मज्जयित्वा च वारिणा।
भस्मस्नानं तत: कुर्याच्छुद्धान्त:करण: शुचि:॥४१॥
भस्म संगृह्य मूलेन षड्वारमभिमन्त्र्य च
शिर ईशानमन्त्रेण पुरुषेण मुखं तथा॥४२॥
हृत्प्रदेशमघोरेण वामदेवेन गुह्यकम्।
पादौ सद्येन सर्वाङ्गं प्रणवेनैव सेचयेत्॥४३॥
भस्मना विहितं स्नानमिदमाग्नेयमुत्तमम्।
शुष्केण भस्मना लिम्पेत् सर्वाङ्गं मूलमुच्चरन्।
उद्धूलनमिदं पश्चात् सजलेनैव कुण्ठयेत्॥४४॥

वज्रशिला का ध्यान करके उस पर उस जल को फेंक दे और भावना करे कि वह पापपुरुष चूर-चूर हो गया है। यही अघमर्षण है॥३८॥ विद्वान् साधक देवता आदि का तर्पण करे। मूल मन्त्र के जप से शिव और उनके गणों को शुद्ध मन से तर्पित करे। फट्कार अस्त्र से शिवतीर्थ को विसर्जित कर दे॥३९॥

प्रात:काल के स्नान में शरीर पर मिट्टी न लगाए। इसके बाद धुले (अधरीय और उत्तरीय) दो वस्त्रों का धारण करके गीले वस्त्रों को छोड़ दे॥४०॥ इष्टलिङ्ग को हथेली पर रख कर जल से अभिषेक कराने के बाद शुद्ध मन से पवित्र साधक भस्म-स्नान करे॥४१॥ भस्म लेकर मूल मन्त्र से छ: बार अभिमन्त्रित करके, ईशान मन्त्र से सिर को, तत्पुरुष मन्त्र से मुख को॥४२॥ अघोर मन्त्र से हृदय-स्थल को, वामदेव मन्त्र से गुह्य भाग को, सद्योजात मन्त्र से दोनों पैरों को और ॐकार से सर्वाङ्ग को सिंचित करे॥४३॥ भस्म द्वारा किया गया स्नान उत्तम आग्नेय स्नान

वामपाणितलन्यस्ते षट्कोणं भस्मनि न्यसेत्।
प्रणवं तन्मुखे चैव वायकारौ भुजद्वये॥४५॥
शिकारं यन्त्रमध्ये च नमकारौ पदद्वये।
विलिख्य मूलमन्त्रेण षड्वारमभिमन्त्रयेत्॥४६॥
उत्तमाङ्गे ललाटे च कर्णयोर्नेत्रयोर्द्वयोः।
नासावक्त्रगलेष्वेवमंसद्वितयके तथा॥४७॥
कूर्परे मणिबन्धे च हृदये पार्श्वयोर्द्वयोः।
नाभौ गुह्यद्वये चैव ऊर्वोः स्फिग्बिम्बजानुषु॥४८॥
जङ्घाद्वये च पदयोर्द्वात्रिंशत्स्थानके तथा।
भस्म त्रिपुण्ड्रं संधार्य रुद्राक्षान् बिभृयात्ततः॥४९॥

रुद्राक्षधारणम्

*शिखायामेकरुद्राक्षं त्रिंशत्तु शिरसा वहेत्।
षट्त्रिंशत्तु गले दद्याद् बाह्वोः षोडश षोडश॥५०॥

है[१७]। मूल मन्त्र का उच्चारण करते हुए सूखे भस्म का सारे अङ्गों में लेपन करे। इसे उद्धूलन कहते हैं। बाद में जल के साथ भस्म मिलाकर अङ्गों पर जमा दे॥४४॥ बाएँ हथेली पर भस्म लेकर उसमें षट्कोण आकृति बनाए। ॐकार को षट्कोण के मुख में, वा और य को क्रमशः षट्कोण की दोनों भुजाओं में॥४५॥ शि व को षट्कोण के मध्य में, न और मः को दोनों पैरों में क्रमशः उल्लिखित करे[१८] इसको मूल मन्त्र से छः बार अभिमन्त्रित करे॥४६॥ सिर के ऊपर (१), ललाट में (२), दोनों कानों में (४), दोनों आंखों में (६), नाक पर (७), मुख पर (८), गले में (९) दोनों कंधों पर (११)॥४७॥ दोनों कुहनियों पर (१३), दोनों मणिबन्धों (कलाइयों) पर (१५). हृदय में (१६), दोनों काखों में (१८), नाभि में (१९), दोनों गुह्य स्थानों में (२१), दोनों जांघों पर (२३), दोनों स्फिग्[१९] (२५), बिम्ब में (२६) दोनों घुटनों पर (२८)॥४८॥ दोनों पिंडलियों पर (३०), दोनों पैरों(३२) – इन बत्तीस स्थानों पर भस्म का त्रिपुण्ड्र लगाकर रुद्राक्षों का धारण करे॥४९॥

शिखा में एक, सिर पर तीस, गले में छत्तीस, बाहों में सोलह-सोलह॥५०॥

---

*. सि. शि. ७.२३ - ३३ से तुलनीय।

१७. मिलाइए – भस्मना विहितं स्नानमिदमाग्नेयमुत्तमम्। (सि. शि. ७.२३)

१८. ✡ ऐसी आकृति।

१९. कमर के नीचे का मांसपिण्ड।

द्वादश मणिबन्धेऽपि स्कन्धे पञ्चशतं वहेत्।
अष्टोत्तरशतैर्मालां जपयज्ञे प्रकल्पयेत्॥५१॥
द्विसरं त्रिसरं वाऽपि सराणां पञ्चकं तु वा।
सप्तकं दशकं वाऽपि बिभृयात् कण्ठदेशतः॥५२॥
मकुटे कुण्डले चैव कर्णिकाहारकेषु च।
केयूरकटके चैव कक्षबन्धे विशेषतः।
सुप्ते पीते सदाकालं रुद्राक्षान् धारयेन्नरः॥५३॥
त्रिशतं त्वधमं पञ्चशतं मध्यममुच्यते।
सहस्रमुत्तमं प्रोक्तमेवं भेदेन धारयेत्॥५४॥

सन्ध्योपासनपूजने

ततः सन्ध्यामुपासीत प्राणायामपुरस्सरम्।
मदीयसान्ध्यकोपास्तिः सन्ध्योपास्तिः प्रकीर्तिता।
सवितुर्मण्डलस्वामी सावित्रीदेवताऽस्म्यहम्॥५५॥
सन्ध्याकाले मदन्या तु देवता यद्युपास्यते।
चत्वारि तस्य नश्यन्ति ह्याहुः प्रज्ञा यशो बलम्॥५६॥
तत् त्रिसन्ध्यमुपास्योऽहमान्तरः सवितुः परः।
भर्गमुख्याभिधानश्च प्राणधीचोदकः सदा॥५७॥

मणिबन्धों में बारह-बारह, कंधे पर पांच सौ रुद्राक्ष धारण करे। जप-यज्ञ में एक सौ आठ रुद्राक्षों की माला बनाए॥५१॥ कंठ में दो, तीन, पांच, सात या दस लरियों की मालाएँ धारण करे॥५२॥ मुकुट, कुण्डल, कर्ण का हार, केयूर[२०] कटक[२१] और कक्षबन्ध में विशेष रूप से सोते जागते सभी समय मनुष्य रुद्राक्षों का धारण करे॥५३॥ तीन सौ रुद्राक्ष अधम, पांच सौ मध्यम और एक हजार रुद्राक्ष उत्तम माना गया है। इस तरह प्रकार-भेद से इनको धारण करे॥५४॥

पहले प्राणायाम करके सन्ध्योपासन करे। मेरी सांध्य पूजा[२२] सन्ध्योपासना कहलाती है। मैं ही सूर्य-मण्डल का स्वामी सावित्री देवता हूँ॥५५॥ सन्ध्याकाल में यदि मुझसे अन्य देवता की उपासना की जाए तब उपासना करने वाले की आयु, विद्या, यश और बल नष्ट हो जाते हैं॥५६॥ अतः प्रातः, मध्याह्न और सायं इन तीनों संध्याओं

---

२०. केयूर = अङ्गद, बाजूबंद।

२१. कटक = कंकण।

२२. सूर्य की काल संधियों में होने वाली पूजा जैसे प्रातः, मध्याह्न और सायम् की सन्ध्याएँ।

अरुणस्योदये सूर्यस्योदये सङ्गवे तथा।
मध्याह्ने च ततः सायमर्धरात्रे च सुव्रते।
उत्तमैरर्चनीयोऽहं षट्कालं भक्तिशालिभिः ॥५८॥
अर्घ्यान्तां समनुष्ठाय सन्ध्यां शैवीं च सादरम्।
अरुणस्योदये कुर्यात् पूजां तात्कालिकीं ततः ॥५९॥
जपेद् भानूदयान्तं च सावित्रीं यतमानसः।
उपतिष्ठेच्च सवितुरन्तरं मामनन्यधीः ॥६०॥
ततो भानूदये कुर्यान्मदर्चां होममप्यथ।
जपेत् षडक्षरीं साङ्गां श्रीरुद्रादीन् विशेषतः ॥६१॥
सर्वेभ्यो द्रव्ययज्ञेभ्यो जपयज्ञो विशिष्यते।
जपयज्ञं समाप्यैवं गुर्वादीनभिवादयेत् ॥६२॥
अष्टभागमहः कृत्वा ह्याद्यमेवं समापयेत्।
द्वितीयभागे त्वभ्यस्येद् वेदान् दिव्यागमानपि ॥६३॥

में मेरी उपासना करे। मैं सूर्य से परे, अन्तर में रहने वाला, प्राणों और बुद्धि का सदा प्रेरक हूँ, जिसे भर्ग इस मुख्य नाम से लोग जानते हैं॥५७॥ उषःकाल, सूर्योदय के समय, सङ्गव[२३] काल, मध्याह्न, सायं और अर्धरात्रि के समय, हे सुव्रते! इन छः कालों में भक्तियुक्त उत्तम लोगों द्वारा मेरी पूजा करनी चाहिए॥५८॥ आदर पूर्वक अर्घ्यप्रदान पर्यन्त शैवी सन्ध्या करने के बाद उषःकाल में उस काल के लिए विहित पूजा करे॥५९॥ सूर्य के उदय होने तक स्थिर चित्त होकर गायत्री जपे। अन्य कुछ न सोचते हुए सूर्य के मध्य में स्थित शिव का उपस्थान[२४] करे॥६०॥ सूर्योदय हो जाने पर शिव का पूजन और होम करे। साङ्ग षडक्षर मन्त्र का तथा विशेष रूप से श्रीरुद्र[२५] का पाठ करे॥६१॥ सभी द्रव्य यज्ञों से जप यज्ञ विशिष्ट होता है[२६]। इस प्रकार जप यज्ञ समाप्त करके गुरु आदि का अभिवादन करे॥६२॥ दिन के आठ भाग[२७] करके प्रथम भाग को पूर्वोक्त प्रकार से बिताए। दूसरे भाग में वेदों

---

२३. सङ्गव काल = सूर्योदय के बाद का काल।

२४. सूर्य के सामने मुख करके अंजलि बना कर अथवा दोनों हाथों को ऊपर उठाकर सूर्य की मन्त्र-सहित उपासना।

२५. शु. य. का १६वाँ अध्याय।

२६. दे. भगवद्गीता – द्रव्ययज्ञाज्जपो यज्ञो विशिष्टो दशभिर्गुणैः।

२७. दिनरात्रि की साठ घटियों को आठ प्रहर या यामों में विभक्त किया जाता है। आजकल के काल परिमाण के अनुसार प्रत्येक प्रहर साढे सात घटियों का होता है।

शास्त्राणि पाठयेच्छिष्यान्मत्तत्त्वं बोधयेदपि।
तदा समाचरेद् भक्त्या पूजां सङ्गवकालिकीम्॥६४॥
समित्कुशादीन् होमार्थं पूजार्थं च प्रयत्नतः।
पुष्पाणि विल्वपत्राणि गुग्गुल्वादीनि चाहरेत्॥६५॥
तृतीयभागे कुर्वीत यत्नं पोष्यार्थसिद्धये।
तथा चतुर्थभागे तु स्नानार्थं मृदमाहरेत्॥६६॥
शिवतीर्थं तु संपाद्य मृदाऽङ्गान्युपलिप्य च।
स्नानं माध्याह्निकं कृत्वा सन्ध्याद्वयमुपास्य च।
ततः पञ्च महायज्ञाः कर्तव्या गृहिणा मुदा॥६७॥

पञ्चयज्ञाः

देवानां च पितृणां च भूतानां च नृणामपि।
ब्रह्मणश्च विनिर्दिष्टाः पञ्चयज्ञा नगात्मजे॥६८॥
जुहोति समिधाद्यग्नौ देवयज्ञः प्रकीर्तितः।
ददात्यपः पितृभ्योऽयं पितृयज्ञ इतीरितः॥६९॥
बलिं हरति भूतेभ्यो भूतयज्ञ उदाहृतः।
मनुष्ययज्ञः स हि यद् विप्रेभ्योऽन्नं प्रयच्छति।
यत् स्वाध्यायमधीयीत ब्रह्मयज्ञ इतीर्यते॥७०॥

तथा दिव्य आगमों का अभ्यास करे॥६३॥ शिष्यों को शास्त्रों का अध्यापन कराए और शिव-तत्त्व का ज्ञान कराए। तदनन्तर सङ्गव काल की पूजा करे॥६४॥ होम और पूजा के निमित्त यत्नपूर्वक समिधा, कुशा, पुष्प, विल्वपत्र, गुग्गुल आदि ले आए॥६५॥ दिन के तीसरे भाग में भोज्य पदार्थों को बनाने का यत्न करे। चौथे भाग में स्नान के निमित्त मिट्टी ले आए॥६६॥ शिवतीर्थ बनाकर अङ्गों में मिट्टी का लेपन करके मध्याह्नकालिक स्नान करने के बाद दो सन्ध्याओं की उपासना करे। तदनन्तर गृहस्थ को प्रसन्नतापूर्वक पांच महायज्ञ करने चाहिए॥६७॥

हे पर्वतपुत्रि! देवों, पितरों, भूतों, मनुष्यों और ब्रह्म के निमित्त किए जाने वाले यज्ञ पांच महायज्ञ कहे गये हैं॥६८॥ समिधा आदि से अग्नि में हवन देवयज्ञ, पितरों के निमित्त जल देना पितृयज्ञ, ॥६९॥ भूतों को बलि देना भूतयज्ञ, ब्राह्मणों को अन्न देना, मनुष्ययज्ञ तथा स्वाध्याय करना ब्रह्मयज्ञ कहलाता है॥७०॥ अग्निष्वात्त[२८] पितरों

---

२८. अग्निष्वात्त पितर। ये पितर श्रौत-स्मार्त कर्मों का अनुष्ठान करने वाले मृत्यु के बाद जब अग्नि में दग्ध हो जाते हैं, तब वे देवताओं के साथ सोम का पान करते हुए रहते हैं। द्र. शु. य. १९.५८ महीधरभाष्य।

अपसव्यं विधेयं स्यादग्निष्वात्तादितर्पणे।
पुनस्तन्न विधेयं स्यात् स्वपितॄणां तु तर्पणे॥७१॥
ततो माध्याह्निकी पूजा कार्या गुर्वी लघुस्तु वा।
महती वा यथाशक्ति श्रद्धाभक्तियुतात्मना॥७२॥
पण्डितो वाऽथ मूर्खो वा प्रियो वा द्वेष्य एव वा।
सम्प्राप्तो यस्तु पूजान्ते स एवाहं न संशय:॥७३॥
मत्तोऽधिको जङ्गमो हि स पूज्यो गृहमागत:।
अन्नपानादिभिश्चैव तदभीष्टप्रदानत:॥७४॥
एवं जङ्गममाराध्य प्रसादमुपभुज्य च।
सुखमास्थाय मच्चित्तस्तदन्नं परिणामयन्॥७५॥
मत्स्तोत्राणि पठेद्वाऽपि पुराणान्यभ्यसेत्तु वा।
आसायमथ कुर्वीत यत्नं पोष्यार्थसिद्धये॥७६॥

सायंकृत्यानि

तत: स्नात: शुचिर्भूत्वा भस्मस्नानं विधाय वा।
उपास्य पश्चिमे सन्ध्ये होमकार्यं समाप्य च।
कृत्वा सायन्तनीं पूजां वैश्वदेवं समाचरेत्॥७७॥

आदि का तर्पण अपसव्य, अर्थात् यज्ञोपवीत को बाएँ कंधे के नीचे रखकर करना चाहिए। पर अपने पितरों के तर्पण में अपसव्य नहीं होना चाहिए[२९] ॥७१॥ इसके बाद श्रद्धा-भक्ति से युक्त साधक को शक्ति के अनुसार छोटी, बड़ी या महती माध्याह्निक पूजा करनी चाहिए॥७२॥ पूजा के अन्त में पण्डित या मूर्ख, प्रिय या द्वेष का पात्र जो कोई आ जाए, वह निस्सन्देह शिव ही होता है॥७३॥ जङ्गम[३०] शिव से भी श्रेष्ठ होता है, उसके घर में आ जाने पर अन्नपान आदि उसकी प्रिय वस्तु देकर उसकी पूजा करनी चाहिए॥७४॥ इस प्रकार जङ्गम की पूजा करके प्रसाद का भोजन करे और सुख पूर्वक बैठकर अन्न को पचाता हुआ शिव में चित्त लगाए॥७५॥ अथवा शिवस्तोत्रों का पाठ करे या पुराणों का अभ्यास करे। भोज्य वस्तुओं को जुटाने के लिए सायंकाल तक प्रयत्न करे॥७६॥

इसके बाद स्नान करके पवित्र होकर अथवा भस्म स्नान करने के बाद दोनों सन्ध्याओं की उपासना करे। होम कार्य समाप्त करने अनन्तर सायंकाल को पूजा

---

२९. यह नियम श्रौत-स्मार्त श्राद्ध विधि से विपरीत है।
३०. दे. द्वितीय पटल, टिप्पणी सं. ६.

विधायाऽथ यथाशक्ति मत्पूजामर्धरात्रिकीम्।
सायमायान्तमतिथिं पूजयेदतिभक्तितः ॥७८॥
यत्पातकं भवेद् देवि विमुखे च दिवातिथौ।
सायं हि विमुखे तस्मिंस्तदष्टगुणितं भवेत् ॥७९॥
तस्मात् स्वशक्त्या सम्पूज्य सूर्योढमतिथिं द्विजः।
प्रसादमुपभुज्याथ मत्स्तोत्राणि पठेदपि ॥८०॥
आत्माभिरुचितां शय्यामधिष्ठाय शुचिस्तु माम्।
स्मरन् समाधिमास्थाय शयीताऽर्वाक्छिराः सुखम् ॥८१॥
इत्थमुक्तं कृत्यजातमाह्निकं यन्मया प्रिये।
द्विजानां मम भक्तानां मत्पदप्राप्तिसाधनम् ॥८२॥

इति श्रीकारणागमे उत्तरभागे पार्वतीपरमेश्वरसंवादे क्रियापादे
आह्निकविधिर्नाम तृतीयः पटलः ॥३॥

करके वैश्वदेव[३१] करे ॥७७॥ शक्ति के अनुसार अर्धरात्रि की शिवपूजा करने के बाद सूर्यास्त के साथ आए अतिथि की भक्ति-पूर्वक पूजा करे ॥७८॥ हे देवि! यदि कोई अतिथि दिन में विमुख होकर लौट जाए तब जो पाप लगता है, सायं काल के आए अतिथि के लौट जाने से उसका आठ गुना पाप लगता है ॥७९॥ अतः सूर्य के अस्त होते समय आने वाले अतिथि की द्विज शक्ति भर पूजा करके प्रसाद का भोजन करे और शिव - स्तोत्रों का पाठ करे ॥८०॥ अपनी पसंद के बिस्तर पर पवित्र होकर बैठने के बाद ध्यानपूर्वक शिव का स्मरण करता हुआ सुखपूर्वक पश्चिम की ओर सिर करके सो जाए ॥८१॥ हे प्रिये! मैंने जो यह दैनिक कृत्य बतलाए हैं, वे मेरे भक्त द्विजों को शिव-पद की प्राप्ति कराते हैं ॥८२॥

श्रीकारणागम के उत्तरभाग में श्रीपार्वतीपरमेश्वरसंवादरूपक्रियापादान्तर्गत
आह्निकविधि नामक तृतीय पटल समाप्त हुआ ॥३॥

---

३१. भोजन के पूर्व जन्तुओं, गौ आदि तथा अतिथि के निमित्त भोज्य पदार्थ अलग निकाल कर रखने की वैदिकी प्रथा को बलिवैश्वदेव कहते हैं।



चतुर्थः पटलः

देव्युवाच

देवदेव महादेव सर्वेश्वर नमोऽस्तु ते।
अश्रौषमाह्निकं देव भक्तानामिष्टदायकम्॥१॥
अर्चाविशेषान् ग्रहणविशेषनियमानपि।
रङ्गवल्लीविधानं च वर्तिकासाधनं तथा॥२॥
योग्यानि पत्रपुष्पाणि तदीयग्रहणं तथा।
श्रोतुमिच्छामि भगवन् वद मे करुणानिधे॥३॥

महादेव उवाच

शृणु वक्ष्यामि नगजे न गोप्यं त्वयि विद्यते।
मत्पूजा त्रिविधा लघ्वी गुर्वी च महती तथा॥४॥

पूजात्रयविधानम्

उत्तमो महतीं कुर्याद् गुर्वीं मध्यम एव च।
लघ्वीमशक्तः कुर्याच्च सायं माध्याह्निके तथा॥५॥

देवी ने कहा—

हे देवाधिदेव महादेव! सर्वेश्वर! आपको नमन करती हूँ। हे देव! भक्तों को अभीष्ट देने वाले आह्निक का मैंने श्रवण किया॥१॥ हे भगवान्! करुणानिधे! अर्चा-विशेषों, ग्रहण में पालनीय विशेष नियमों, रङ्गवल्ली (रंगोली) के विधान, बत्तियों के साधन॥२॥ उचित पत्रों, पुष्पों और उनके ग्रहण के बारे में सुनना चाहती हूँ, मुझे बताएँ॥३॥

महादेव ने कहा—

हे पार्वति! तुमसे कुछ भी छिपाना नहीं है। सुनो, मैं बतलाता हूँ। शिव की पूजा तीन प्रकार की होती है— छोटी, बड़ी और महती॥४॥ उत्तम साधक महती पूजा करे। मध्यम साधक बड़ी और अशक्त साधक छोटी पूजा माध्यन्दिन और सायं काल के समय करे॥५॥ हे सुव्रते! प्रातः आदि काल में भोजन के निमित्त

अवसरा भोजने प्रोक्ता प्रातरादिषु सुव्रते।
त्रिकालमर्चनां कुर्याच्छक्तः षट्कालमेव वा॥ ६॥
द्विजोऽरुणोदये स्नात्वा सवित्रेऽर्घ्यं प्रदाय च।
मदर्चनां विधायैव सावित्रीं प्रजपेन्नरः॥ ७॥
यावत् सूर्योदयः पश्चादुपतिष्ठेदहस्करम्।
जपयज्ञं विधायैवं पूजामुदयकालिकीम्॥ ८॥
कुर्यात् तथा सङ्गवे च मध्याह्ने च यथाक्रमम्।
सायं सन्ध्यामुपास्यार्चां कुर्यात् सायन्तनीं तथा॥ ९॥
आद्ययामे समारभ्य द्वितीये तु समापयेत्।
गृही निश्यर्धरात्रार्चां श्रद्धाभक्तिसमन्वितः॥१०॥
नक्तं द्वितीययामस्य भागावाद्यन्तगौ मतौ।
गृहिणश्च यतेरर्धरात्रपूजावसानगौ॥११॥

ग्रहणनियमाः

उपरागो भवेद्यामे प्रथमे चेत् तदानघे।
द्वितीययामे कर्तव्या मम पूजार्धरात्रिकी॥१२॥
उपरागो यदा यामे द्वितीये वा तृतीयके।
अर्चामवसरां कृत्वा न भुञ्जीत द्विजस्तदा।
नक्तव्रती यदि पुनर्विशेषस्त्वधुनोच्यते॥१३॥

अवसरा पूजा बतलाई गई है। जो समर्थ है, वह तीनों या छओं काल में पूजा करे॥६॥ अरुणोदय के समय स्नान करके, सूर्य को अर्घ्य देकर शिव की पूजा करने के बाद सूर्योदय होने तक द्विज गायत्री का जप करे॥७॥ इसके बाद सूर्य का उपस्थान[1] करे। इस प्रकार जपयज्ञ करने के बाद उदय काल में॥८॥ सङ्गव और मध्याह्न में क्रमानुसार पूजा करे। सायंकाल सन्ध्योपासन करके सायंकाल की पूजा करे॥९॥ श्रद्धा-भक्ति से युक्त गृहस्थ रात्रि के पहले प्रहर से आरम्भ करके द्वितीय प्रहर में अर्धरात्रि की पूजा समाप्त करे॥१०॥ रात्रि के दूसरे प्रहर के आदि और अन्त दो भाग होते हैं। गृहस्थ प्रथम भाग में और यति द्वितीय भाग में पूजा समाप्त करे॥११॥

यदि रात्रि के पहले प्रहर में ग्रहण हो, तब हे निष्पापे! दूसरे प्रहर में अर्धरात्रि की पूजा करे॥१२॥ यदि दूसरे या तीसरे प्रहर में ग्रहण हो, तब ग्रहण के प्रहर

---

१. दे. तृतीय पटल, टिप्पणी २४

उपरागो यदा यामे द्वितीये वा तृतीयके।
यामात् पुरस्तात् कर्तव्या मम पूजा न भोजना ॥१४॥
सोमोपरागे पौरस्त्यस्त्याज्यो यामस्तु भोजने।
तत्पूर्वः शस्यते कालो नित्यनक्तोपजीविनाम् ॥१५॥
ग्रस्तेऽप्यस्तमिते भानौ नोपवासो नियुज्यते।
यतः प्रसादः संसेव्यो नियतं नक्तभोजिनाम् ॥१६॥

पद्मभद्रतत्त्वमण्डलानि

पद्मं भद्रं तथा तत्त्वमण्डलं हि क्रमोत्तमम्।
अर्चनोचितपात्राणां विन्यासाय प्रकीर्तितम्।
सिततण्डुलचूर्णेन पद्ममष्टदलं भवेत् ॥१७॥
अष्टौ पूर्वाग्रगा रेखा लिखेत् तिर्यक् तथा पुनः।
एकोनपञ्चाशत्कोष्ठचक्रमेवं भवेत् ततः ॥१८॥
सूक्ष्मपद्मानि विन्यस्येत् षट्त्रिंशत्कोष्ठके तथा।
त्रयोदशसु मध्येषु लिखेदष्टदलाम्बुजम्।
दशायुधानि विन्यस्येत् परितो मण्डलं पुनः ॥१९॥

के पूर्व अवसरा पूजन करके द्विज भोजन न करे। रात को व्रत रखे। अब विशेष बात बतलाता हूँ॥१३॥ कि यदि ग्रहण दूसरे या तीसरे प्रहर में हो तो शिव की पूजा ग्रहण के प्रहर से पूर्व कर ले, पर भोजन न करे॥१४॥ चन्द्रग्रहण में पहले प्रहर में भोजन का त्याग करे। जो लोग रोज रात्रि में भोजन करते हैं, उनके लिए ग्रहण के पूर्व भोजन कर लेना चाहिए॥१५॥ यदि सूर्यग्रहण ग्रस्त होकर अस्त हो गया हो तब उपवास का बन्धन नहीं है, क्योंकि रात्रिभोजी अवश्य प्रसाद का सेवन करे॥१६॥

पद्म, भद्र तथा तत्त्व मण्डल ये क्रमसे उत्तरोत्तर उत्तम माने गए हैं। ये मण्डल अर्चना के निमित्त निर्धारित पात्रों को रखने के लिए बताए गए हैं। पद्म मण्डल आठ पंखुड़ियों वाला तथा सफेद चावल के चूर्ण से बनाया जाता है॥१७॥ (भद्र मण्डल) पूर्व की ओर आठ लंबी रेखाएँ खींचे, फिर आठ आड़ी रेखाएँ खींचे। इस प्रकार उनचास कोष्ठकों का एक चक्र बनता है॥१८॥ छत्तीस कोष्ठकों में छोटे-छोटे कमल बनाए। बीच के तेरह कोष्ठकों में आठ दलों वाले कमल बनाए। फिर मण्डल

पूर्वे तु स्वस्तिकं शङ्खमाग्नेये कमलं तथा।
दक्षिणे चामरं छत्रं नैर्ऋत्यां पञ्चकोणकम्॥२०॥
पश्चिमे नागबन्धं च वायौ षट्कोणमेव च।
उत्तरे डमरुं शूलमैशाने त्वष्टकोणकम्॥२१॥
एतल्लिङ्गार्चनापात्रविन्यासार्हं मम प्रियम्।
भद्रमण्डलमाख्यातं भद्रदं मुक्तिदं परम्॥२२॥
सप्तत्रिंशल्लिखेद् रेखा ऊर्ध्वाग्रास्तिर्यगप्यथ।
षण्णवत्युत्तरद्वादशशतात्मककोष्ठकम् ॥२३॥
चक्रं भवति तन्मध्ये षट्त्रिंशद्दलवारिजम्।
परितः सर्वकोष्ठेषु सूक्ष्मपद्मानि संलिखेत्।
दशायुधानि विन्यस्येत् परितो मण्डलं बुधः ॥२४॥
इष्टलिङ्गार्चनापात्रविन्यासायोत्तमोत्तमम् ।
तत्त्वमण्डलमाख्यातं तत्त्वानुभवसाधनम्॥२५॥
पद्मं त्ववसराख्यायां लघ्व्यामपि समीरितम्।
भद्रमण्डलमुख्यानि गुर्व्यादिषु च विन्यसेत्॥२६॥

के चारों ओर दस आयुधों[2] का लेखन करे॥१९॥ पूर्व में स्वस्तिक और शङ्ख, अग्नि कोण में कमल, दक्षिण में चामर तथा छत्र, नैर्ऋत्य कोण में पञ्चकोणात्मक आकृति॥२०॥ पश्चिम में नागबन्ध, वायव्य कोण में षट्कोणात्मक आकृति, उत्तर में डमरु तथा एवं ईशानकोण में अष्टकोणात्मक शूल की आकृति॥२१॥ इष्टलिङ्ग की अर्चना के पात्रों को रखने के लिए यह बनाया जाता है। यह भद्रमण्डल कल्याण और मुक्ति देने वाला कहा गया है। (तत्त्वमण्डल) सैंतीस रेखाएं नीचे से ऊपर की ओर और इतनी ही आड़ी रेखाएँ खींचे जिससे बारहसौ छियानवे कोष्ठकों की आकृति बनती है।[3] ॥२२-२३॥ इसके मध्य में छत्तीस पंखुड़ियों वाला कमल बनाए। चारों ओर के अन्य सारे कोष्ठकों में छोटे-छोटे कमल बनाए। मण्डल के चारों ओर दस आयुध लिखे॥२४॥ इष्टलिङ्ग की पूजा के पात्रों को रखने के लिए यह तत्त्व - मण्डल नामक मण्डल सबसे उत्तम कहा गया है और यह तत्त्व के अनुभव का साधन है॥२५॥ पद्ममण्डल अवसरा नामक छोटी पूजा में भी बनाना चाहिए। बड़ी और महती पूजाओं में भद्रमण्डल आदि बनाए॥२६॥

---

२. दस आयुध = संभवतः आगे के श्लोकों में वर्णित स्वस्तिक आदि को आयुध कहा गया है।
३. उनचास कोष्ठकों की तरह ही १२९६ कोष्ठकों का भी मण्डल बनाया जाता है।

दीपार्पणम्

लघ्व्यामवसरायां वा ज्वालयेद् दीपमेककम्।
गुर्व्यां महत्यामपि च द्वौ वाऽथ चतुरोऽपि वा ॥२७॥
नीराजनत्रयं प्रोक्तमवसराख्यपूजने।
आद्यं दर्शनसंज्ञं स्यान्मज्जनाख्यं द्वितीयकम्।
तृतीयमवसराख्यमेवं संपूजयेत् प्रिये ॥२८॥
नीराजनानां नवकं लघ्व्यामुक्तं वरानने।
प्रथमं दर्शनाख्यं स्यादवसराख्यं द्वितीयकम् ॥२९॥
मज्जनाख्यं तृतीयं तु माङ्गल्याख्यं चतुर्थकम्।
कर्पूराख्यं पञ्चमं स्यात् षष्ठं शृङ्गारसंज्ञकम् ॥३०॥
सप्तमं तु महासंज्ञमानन्दाख्यमिहाष्टमम्।
असंख्याताभिधं चैतन्नवमं परिकीर्तितम् ॥३१॥
सानुरागाभिधं ताम्बूलाभिख्यं च महार्चने।
गुर्वर्चनेऽपि हि भवन्त्येकादश प्रियव्रते ॥३२॥

वर्तिकाविधानम्

तिस्रस्त्ववसराख्यायां वर्तिका विहिता इह।
नव द्वादश वा प्रोक्ता वर्तिका लघुपूजने ॥३३॥
अष्टादशाथ षट्त्रिंशद्वा प्रोक्ता गुरुपूजने।
आनवक्रमसंख्या वा तथा षण्णवतिस्तु वा ॥३४॥

छोटी अवसरा पूजा में एक दीप जलाए। बड़ी और महती पूजाओं में दो या चार दीप जलाए॥२७॥ अवसरा नामक पूजा में तीन नीराजन (आरती) करना बतलाया गया है। पहले नीराजन को दर्शन, दूसरे को मज्जन और तीसरे को अवसर कहते हैं। हे प्रिये! इस तरह पूजन करे॥२८॥ छोटी पूजा में नौ नीराजन बतलाए गए हैं— पहला दर्शन, दूसरा अवसर॥२९॥ तीसरा मज्जन, चौथा माङ्गल्य, पाँचवां कर्पूर, छठा शृंगार॥३०॥ सातवां महा, आठवां आनन्द और नवां असंख्यात॥३१॥ महती पूजा में, हे प्रियव्रते! सानुराग और ताम्बूल इन दो अन्य नीराजनों को पूर्वोक्त नौ नीराजनों में जोड़कर ग्यारह नीराजन होते हैं॥३२॥

अवसरा में तीन बत्तियाँ विहित हैं। छोटी पूजा में नौ या बारह बत्तियाँ कही गई हैं॥३३॥ महती पूजा में अठारह या छत्तीस बत्तियाँ बताई गई हैं। नौ से लेकर क्रमशः संख्या में या छियानवे या॥३४॥ एक सौ आठ या तीन सौ या एक

अष्टोत्तरशतं वाऽथ त्रिशतं वा सहस्रकम्।
महत्यां मम पूजायां वर्तिका ज्वालयेदपि॥३५॥
षट्त्रिंशत्तन्तुभिः कुर्याद्वर्तिका मम पूजने।
फलं तिसृभिरेव स्यादष्टोत्तरशतोदितम्॥३६॥

पूजोचितानि पुष्पपत्राणि

अथ वक्ष्यामि पुष्पाणि पूजायां मत्प्रियाणि वै।
नन्द्यावर्तश्रियावर्तकरवीरबकानि च॥३७॥
द्रोणपुन्नागमन्दारजलजार्कोत्पलान्यपि।
लोध्रधुत्तूरनिर्गुण्डीविल्वाशोकमुनीन्यपि।
मालतीमाधवीजातीमल्लिकापाटलानि च॥३८॥
एतेषु शुभ्रवर्णानि ममात्यन्तप्रियाणि वै।
एतानि सात्त्विकानि स्युर्मुक्तिदानि भवन्ति हि॥३९॥
एतानि राजसानि स्युर्भोगसिद्धिकराणि च।
मिश्राणि पीतवर्णानि भोगमोक्षप्रदानि हि॥४०॥
तामसान्यसितानि स्युर्विना नीलोत्पलं प्रिये।
पूजायामुपयुज्येरन्न कदापि नितम्बिनि॥४१॥

हजार बत्तियां भी शिव की महती पूजा में जलाई जा सकती हैं॥३५॥ शिव की पूजा में छत्तीस धागों की बत्तियां बनाए। इस तरह तीन बत्तियों से ही एक सौ आठ बत्तियों का फल मिल जाता है॥३६॥

अब मैं पूजा में शिव के प्रिय पुष्पों को बतलाता हूँ। ये हैं— नन्द्यावर्त, श्रियावर्त, कनेर, बक॥३७॥ द्रोण, पुन्नाग (नागकेसर), मन्दार, जल में उत्पन्न कमल, अर्कोत्पल, लोध्र, धतूरा, निर्गुण्डी, विल्व, अशोक, मुनि (अगस्त्य), मालती, माधवी (वासन्ती लता), जाती (जूही), मल्लिका (बेला), गुलाब॥३८॥ इनमें से सफेद रंग के पुष्प शिव के अत्यन्त प्रिय हैं। ये सात्त्विक और मुक्ति देने वाले होते हैं॥३९॥ लाल रंग के फूल राजस हैं और भोग के साधन हैं। मिले-जुले रंगों वाले या पीले फूल भोग और मोक्ष देते हैं॥४०॥ नील-कमल को छोड़कर अन्य नीले-काले फूल तामस होते हैं। हे पार्वति! इनका पूजन में कभी उपयोग न करे॥४१॥ कदम्ब, चम्पक, पुन्नाग और बृहती (भटकटैया) का वसन्त ऋतु में शिव को अर्पण करने से अश्वमेध

कदम्बं चम्पकं चैव पुन्नागं बृहती तथा।
अश्वमेधफलं दद्युर्वसन्ते मह्यमर्पणात् ।।४२।।
पाटली मल्लिका चैव शतपत्रं ममार्पितम्।
अग्निष्टोमफलं दद्युर्ग्रीष्मर्तौ वरवर्णिनि।।४३।।
अश्वमेधफले स्यातां प्रावृष्याम्बुजमल्लिके।
नीलोत्पलं च कह्लारं धुत्तूरं जातिरेव च।
सत्रयागफलं दद्युः शरद्यर्पणतो मम।।४४।।
जातिर्नीलोत्पलं चैव करवीरमपि प्रिये।
शतक्रतुफलं दद्युर्हेमन्ते मम पूजनात्।
सर्वक्रतुफलं दद्याच्छिशिरे कर्णिकारकम्।।४५।।
पुष्पेष्वारग्वधद्रोणे पत्रे वैल्वमपि ध्रुवम्।
प्रशस्ततममाख्यातं मत्पूजायां वरानने।।४६।।
द्रोणादिपुष्पैः सौवर्णैः कृतं यद् विल्वपत्रकैः।
तदनन्तफलं विद्यात् पूजनं मम पार्वति।।४७।।
पत्राणामपि पुष्पाणां सौवर्णानामिह क्वचित्।
नहि निर्माल्यतादोषस्तस्मात् तैर्नित्यमर्चयेत्।।४८।।
करानीतं पटानीतं धृतमेरण्डपत्रतः।
अपवित्रजनानीतं पत्रं पुष्पं फलं त्यजेत्।।४९।।

में शिव को अर्पण करने से अश्वमेध का फल मिलता है।।४२।। गुलाब, बेला और शतपत्र कमल को ग्रीष्म में शिव को चढ़ाने से, हे सुन्दरि! अग्निष्टोम का फल मिलता है।।४३।। वर्षा ऋतु में कमल, बेला चढ़ाने से अश्वमेध का फल मिलता है। नीलकमल, कह्लार (सुगन्धित कमल), धतूरा और जूही का शिव को अर्पण करने से सत्रयाग का फल प्राप्त होता है।।४४।। प्रिये! जूही, नीलकमल, कनेर से हेमन्त ऋतु में शिव की पूजा करने से सौ क्रतुओं का फल प्राप्त होता है। शिशिर में कर्णिकार (कनेर) से सभी क्रतुओं का फल प्राप्त होता है।।४५।। हे सुमुखि! शिव की पूजा में पुष्पों में आरग्वध तथा द्रोण, पत्र में विल्व सब से प्रशस्त बतलाए गए हैं।।४६।। सोने के बने द्रोण आदि पुष्प और विल्वपत्र से शिव की पूजा करने को, हे पार्वति! अनन्त फल देने वाला बतलाया गया है।।४७।। सोने के बने पत्र, पुष्प में निर्माल्यता का दोष कभी नहीं होता। अतः इनसे नित्य अर्चन करे।।४८।। हाथ में लाए, कपड़े में रखकर लाए, रेंड के पत्ते में रखकर लाए, अपवित्र लोगों द्वारा लाए पत्र, पुष्प और फल का पूजा में उपयोग त्याज्य है।।४९।। भूमि पर गिरे,

च्युतं भुवि तथाऽऽघ्रातमकिञ्जल्कं सकीटकम्।
अवृन्तं सव्रणं पुष्पं पूजायां नोपयुज्यते।।५०।।
जलजं स्थलजं वाऽपि यथोत्पन्नं तथैव च।
पत्राण्यपि तथा न्यस्येद् विल्वपत्रमधोमुखम्।।५१।।
सर्वोपरि न्यसेद् विल्वं विल्वोपरि न किञ्चन।
सर्वोपरि न्यसेद्भस्म भस्मोपरि न किञ्चन।।५२।।
मत्पूजा क्रियते ह्येवं कैवल्यं लभते ध्रुवम्।
सर्वमुक्तं समासेन किमतः श्रोतुमिच्छसि।।५३।।

इति श्रीकारणागमे उत्तरभागे पार्वतीपरमेश्वरसंवादे क्रियापादे रङ्गवल्यादिकथनं नाम चतुर्थः पटलः।।४।।

सूंघे हुए, बिना केसर के, कीट युक्त, बिना डंठल के और कटे-फटे फूलों का पूजा में उपयोग नहीं करना चाहिए।।५०।। जल या स्थल में ये जिस रूप में उत्पन्न होते हैं, उसी रूप में पुष्पों और पत्रों को चढ़ाएँ[४]। पर विल्व पत्र का मुख नीचे की ओर करके चढ़ाए।।५१।। विल्व पत्र को सबसे ऊपर रखे, बिल्व पत्र के ऊपर कुछ न रखे। भस्म को सबसे ऊपर रखे, भस्म के ऊपर कुछ न रखे।।५२।। इस प्रकार की गई शिव की पूजा से निश्चय ही कैवल्य प्राप्त होता है। संक्षेप में सब बतला दिया गया। इसके बाद क्या सुनना चाहती हो ?।।५३।।

श्रीकारणागम के उत्तरभाग में श्रीपार्वतीपरमेश्वरसंवादरूपक्रियापादान्तर्गत रङ्गवल्ल्यादिकथन नामक चतुर्थ पटल समाप्त हुआ।।४।।

---

४. कुछ पुष्प और पत्र नीचे की ओर, कुछ ऊपर की ओर मुख करके उत्पन्न होते हैं। उनको जिस रूप में वे खिलते हैं, उसी रूप में इष्टलिङ्ग पर रखना चाहिए।



पञ्चमः पटलः

देव्युवाच

देवदेव महादेव पञ्चकृत्यपरायण।
जगदीश्वर सर्वात्मन् भूयो भूयो नमोऽस्तु ते॥१॥
पूजोपयुक्तपात्राणां लक्षणानि विशेषतः।
पूजाकाले साधकेन वर्तितव्यं यथा पुनः॥२॥
अभिषेकद्रव्यजातं नियमानर्चकस्य च।
ब्रूहि सर्वमशेषेण प्राणिनिर्वाणकारणम्॥३॥

महादेव उवाच

पूजाकाले कथं वर्तितव्यम्

पुष्कलाच्चोपकरणान्मनोनैर्मल्यसंभवः।
निर्मलेनैव मनसा पूजकः फलभाग् भवेत्॥४॥
सामग्रीसन्निधानेन पूजा सा पुष्कला भवेत्।
पुष्कले पूजने भक्तः पुष्कलां श्रियमश्नुते॥५॥
पूजोपयुक्तसामग्रीं सन्निधाय सुखासने।
समासीनः सनियमः पूजयेन्मामनन्यधीः॥६॥

देवी ने कहा—

हे देवाधिदेव महादेव! हे पञ्चकृत्यों[1] में लगे जगदीश्वर, हे सबके आत्मरूप! आपको बार-बार नमस्कार है॥१॥ पूजा के उपयुक्त पात्रों का विशेष रूप से लक्षण, पूजाकाल में साधक कैसे व्यवहार करे,॥२॥ अभिषेक में प्रयुक्त द्रव्य, पूजक के नियम— इन बातों को पूरी तरह बताएँ जो प्राणियों के मोक्ष के कारण हैं॥३॥

महादेव ने कहा—

अधिकाधिक उपकरणों से मन निर्मल होता है। निर्मल मन से ही पूजक को फल प्राप्त होता है॥४॥ सामग्री के पास में होने से पूजा पुष्कला या अधिकाधिक होती है, पुष्कल पूजन से भक्त पुष्कल श्री का भोग करता है॥५॥ भक्त पूजा की सामग्री को रखकर सुखासन से बैठे और नियम पूर्वक, विना किसी अन्य बात में मन लगाए शिव की पूजा करे॥६॥ सङ्कल्प करके बैठ जाए पर सामग्री पास

---

१. शिव के पञ्चकृत्य— सृष्टि, स्थिति, संहार, बन्ध और अनुग्रह(निग्रह)। दे. वीरशैवाचारचन्द्रिका, पृ० २८

असन्निधाय सामग्रीं संकल्प्योपविशन् जनः।
पुनर्यतेत मूढात्मा न पूजाफलभाग् भवेत्॥ ७॥
अज्ञो वाऽप्यथवा प्राज्ञः सामग्रीं नाह्वयेत् स्वयम्।
मध्ये मध्ये समाहूय चञ्चलो न फली भवेत्॥ ८॥
भक्तः संकल्प्य पूजायै न क्रुद्ध्येत् परिचारकान्।
पूजकः क्रोधसंक्रुद्धः सन्निधिं नाभिगच्छति॥ ९॥
आलस्यं जृम्भणं निद्रां पूजाकाले विवर्जयेत्।
वर्जयेद्विषयासक्तिं पुनः कुर्यान्मदर्पितम्॥१०॥
मदर्पितमना यद्यदलब्धं कुसुमं दलम्।
सन्निधायाथ यत्नेन मनसैवार्पयेन्मयि॥११॥
यस्तु संकल्प्य पूजायै कार्यान्तरनियोजितः।
तत्कार्यं मनसि स्मृत्वा न पूजाफलमश्नुते॥१२॥
पूजामध्ये यदेकेन प्रेषितो महताऽपि वा।
त्वरयेन्मम पूजायां नैति मां तस्य पूजनम्॥१३॥

में न हो तो व्यक्ति बार-बार सामग्री को मांगने का प्रयत्न करता है और ऐसी स्थिति में पूजा के फल को नहीं पाता॥७॥ मूर्ख अथवा ज्ञानी व्यक्ति स्वयं सामग्री न मंगाए, बीच-बीच में आवाज देकर मंगाने वाला चंचल व्यक्ति फल नहीं पाता॥८॥ पूजन का संकल्प कर लेने के बाद सेवकों पर क्रोध न करे। क्रुद्ध पूजक शिव की सन्निधि नहीं पा सकता॥९॥ पूजा के समय आलस्य, जंभाई और निद्रा का त्याग करे। विषयों में आसक्ति का त्याग करके शिव में स्वयं को अर्पित कर दे॥१०॥ यदि शिव में मनको अर्पित करनेवाले साधक को प्रयत्न करने पर भी जो-जो फूल पत्र आदि न मिल सकें, उन उन का मन से ही शिव को अर्पण करे॥११॥ पूजा के निमित्त सङ्कल्प कर लेने के बाद अन्य कार्यों में लग जाने से व्यक्ति उन कार्यों का स्मरण करता रहेगा, जिससे उसे पूजा का फल नहीं मिलेगा॥१२॥ पूजा के बीच में यदि कोई बड़ा भी व्यक्ति किसी कार्य के लिए पूजक को कहीं जाने के लिये कहे और इससे यदि पूजक पूजा में जल्दबाजी करे, तब वह पूजा शिव तक नहीं पहुँच पाती॥१३॥ यदि गुरु बुलाए तो साधक कह दे कि वह पूजा में लगा

गुरुणा यदि वाऽऽहूतः पूजां तस्य निवेदयेत्।
निवेदितेऽपि चाहूतस्तदाज्ञां परिपालयेत्॥१४॥
गुरुर्यतोऽहं देवेशि नावयोर्विद्यते भिदा।
अभेदभावनां ज्ञात्वा तदाज्ञां परिपालयेत्॥१५॥
आख्याति पूजावेलायां वैदिकं यद्विचक्षणः।
तन्मयैवोदितमिति निर्वहेत् स्वप्रयत्नतः॥१६॥
अवैदिकस्याख्यातॄणां निकटे नोपवेशयेत्।
प्रत्याख्यानं न कुर्वीत पिदध्याच्छ्रवणद्वयम्।
नेक्षेत पूजावेलायां नरं देवि बहिष्कृतम्॥१७॥
पूजाकाले यदाख्यातं शैवकार्यमनुत्तमम्।
कुर्यात् सर्वप्रयत्नेन तदशक्तौ तु कारयेत्॥१८॥
पूजकः संस्मरेत् कर्म लौकिकं त्वरयेद् यदि।
शिवद्रोहेण निर्याति कालभैरवयातनाम्॥१९॥
संस्मरन्नपि कर्माणि यो मय्याहितमानसः।
स याति मामकं रूपं कैलासे मद्गणैः सह।
मोदते तस्य नावृत्तिस्तेन सर्वं वशीकृतम्॥२०॥

है। यह कहने पर भी यदि गुरु बुलाता है, तब गुरु की आज्ञा का पालन करे॥१४॥ देवि! कारण कि मैं शिव ही गुरु हूँ और मुझ शिव और गुरु में भेद नहीं है। अभेदभावना को समझकर साधक गुरु की आज्ञा का पालन करे॥१५॥ पूजा काल में जानकार व्यक्ति जो वैदिक, अर्थात् संस्कृत भाषा बोलता है, तो वह भाषा शिव के द्वारा बोली गई भाषा होने के कारण संस्कृत के प्रयोग का निर्वाह करे॥१६॥ जो अवैदिक भाषा[2] बोलता है, उसको अपने पास न बिठाए। उसको उत्तर न दे और उसके बोलने पर अपने कानों को बंद कर ले। पूजा से बहिष्कृत व्यक्ति की ओर हे देवि! साधक न देखे॥१७॥ पूजा के समय जो श्रेष्ठ शैव कार्य बतलाया गया है, उसको पूरे यत्न से स्वयं निष्पन्न करे। यदि स्वयं नहीं कर सकता, तब उस कार्य को दूसरे द्वारा कराए॥१८॥ पूजक यदि सांसारिक कर्मों की याद करके जल्दबाजी करे तब वह शिवद्रोह होगा, जिसके कारण पूजक को भैरव-यातना[3] झेलनी पड़ेगी॥१९॥ कर्मों को याद करने पर भी शिव में मन लगाए रखने वाला भक्त शिव-गणों के साथ कैलास में शिव रूप को प्राप्त करता है। वहाँ आनन्द पाता है और वापस

---

२. अवैदिक, अर्थात् संस्कृत से इतर भाषा—प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी, मराठी, कन्नड आदि।
३. दे. द्वितीय पटल की टिप्पणी सं. ४

पुष्पं पत्रं फलं तोयं श्रमसाध्यं यथा यथा।
फलं तथा तथा तेषां दाताऽहं हि सदाशिवः ॥२१॥
पुष्पलोभः पत्रलोभः पात्रलोभो भयावहः।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन पात्रं पत्रं सुमं तथा।
संपाद्य पूजयेल्लिङ्गं यथाविभवविस्तरम् ॥२२॥

पात्रादिलक्षणम्

सुवर्णपात्रं यत्नेन कुसुमादिदलानि च।
सौवर्णान्येव संपाद्य पूजनीयस्त्वहं शिवे।
राजतं वा दरिद्रश्चेत् ताम्रपात्रं हि कल्पयेत् ॥२३॥
विरक्तो नारिकेलेन पात्रेणैव यजेत् स्वयम्।
सौवर्णपात्रपूजाऽपि न तस्याः सदृशी भवेत् ॥२४॥
विल्वनिर्मितपात्रं तु सर्वेषामुत्तमोत्तमम्।
तत्पात्रसदृशं लोके नास्ति नास्ति महीतले ॥२५॥
पात्रेषु वैल्वं श्लाघ्यं स्याद् वैल्वं पत्रेषु चोत्तमम्।
नीलोत्पलं च पुष्पेषु पूजार्थमुत्तमोत्तमम् ॥२६॥

आकर जन्म नहीं लेता। उसके वश में सब है॥२०॥ पुष्प, पत्र, फल, जल लाने में जितना परिश्रम करना पड़ता है, उसका उतने परिमाण में सदाशिव फल देते हैं॥२१॥ पुष्प, पत्र, पात्र का लोभ करना भयानक है। अतः पूरे प्रयत्न से पात्र, पत्र, पुष्प लाकर अपने वैभव के विस्तार के अनुसार ही साधक को इष्टलिङ्ग की पूजा करनी चाहिए॥२२॥

प्रयत्न करके हो सके तो पात्र, पुष्प, पत्र आदि सोने के बनवाकर, हे शिवे! शिव की पूजा करे। न हो सके तो चांदी के बनवाए। यदि गरीब हो तो तांबे के बनवाए॥२३॥ विरक्त साधक नारियल के पात्रों से स्वयं पूजा करे। सुवर्ण पात्रों से की गई पूजा विरक्त द्वारा नारियल के पात्रों से की गई पूजा की बराबरी नहीं कर सकती॥२४॥ वेल की लकड़ी से बना पात्र सर्वोत्तम होता है। लोक में उस जैसा पात्र सारी पृथ्वी पर नहीं है, नहीं है॥२५॥ पात्रों में विल्व का पात्र, पत्रों में विल्व पत्र उत्तम होता है। फूलों में नीलकमल पूजा के लिए श्रेष्ठ है॥२६॥ सब

सर्वमप्राकृतैर्मन्त्रैः कृत्वा मह्यं समर्पयेत्।
शुद्धभावः समभ्यर्च्य यथोक्तफलभाग् भवेत्॥२७॥
स्वनन्दनोद्भवं पत्रं पुष्पं फलमनुत्तमम्।
आरण्यकानि पुष्पाणि पत्राणि स्वयमर्चयेत्।
शूद्रानीतैः क्रयक्रीतैः कर्म कुर्वन् पतत्यधः॥२८॥
अर्कद्रोणोत्पलाद्यैश्च विल्वारग्वधपत्रकैः।
तिलाक्षतैरर्चयेन्मां भक्तियुक्तेन चेतसा॥२९॥

अर्घ्यादिपात्राणि

पूजोपयुक्तपात्राणां लक्षणं शृणु पार्वति।
सामान्यार्घ्याभिधं चैव पादार्घ्याचमनानि च॥३०॥
त्यागज्ञानानन्दसंज्ञान्यथ स्नानजलस्य च।
पादप्रसादोदकयोस्त्रीण्याधाराभिधानि च।
शिवकुम्भसमाख्यं च पात्राण्येकादश प्रिये॥३१॥
तथाऽन्यानि च पात्राणि भवन्त्यावश्यकानि हि।
गन्धादेरपि धूपस्य दीपानां च विशेषतः॥३२॥

कार्य, प्राकृत से भिन्न, अर्थात् संस्कृत भाषा के मन्त्रों द्वारा सम्पादित करके शिव को अर्पित करे। शुद्ध भाव से किया गया पूजन शास्त्रोक्त फल प्रदान करता है॥२७॥ अपने बगीचे में उत्पन्न पत्र, पुष्प और फल सर्वोत्तम होते हैं। जंगल से पत्र, पुष्प आदि स्वयं लाकर पूजन करे। शूद्र द्वारा लाए गए या खरीदे गए पुष्प-पत्र द्वारा पूजा करने वाले का अधःपतन हो जाता है॥२८॥ मन्दार, द्रोण, कमल आदि पुष्पों से, विल्व, आरग्वध के पत्रों से, तिलयुक्त अक्षत से भक्तिपूर्ण चित्त होकर शिव का पूजन करे॥२९॥

हे पार्वति! पूजा के उपयोग में आने वाले पात्रों का लक्षण सुनो। सामान्यार्घ्य नामक, पादार्घ्य, आचमन॥३०॥ त्याग, ज्ञान और आनन्द नामक स्नान के लिए जल का पात्र, पादोदक तथा प्रसाद के पात्र जो तीन आधार[४] कहे जाने वाले पात्र हैं, शिवकुम्भ[५] नामक पात्र, हे प्रिये ये ग्यारह पात्र होते हैं॥३१॥ अन्य आवश्यक पात्र भी होते हैं जैसे— विशेष रूप से गन्ध, धूप और दीप के पात्र॥३२॥ घंटा,

---

४. आधार पात्र = जिस पात्र में अभिषेक आदि के जल एकत्र किए जाते हैं।
५. शिवकुम्भ जल रखने का बड़ा घड़ा।

घण्टां शङ्खं दर्पणं च छत्रं चामरमेव च।
तालवृन्तं च संपाद्य यजेन्मां लिङ्गरूपिणम्॥३३॥
शिवकुम्भाभिधं पात्रं कुर्याद् विंशतिभिः पलैः।
पात्रं दशपलैः कुर्यात् सामान्यार्घ्यसमाख्यकम्॥३४॥
सार्धसप्तपलैः कुर्यात् पाद्यार्घ्याचमनानि च।
त्यागज्ञानानन्दकानि कुर्यात् पञ्चपलैरपि।
आधाराभिख्यपात्राणि सार्धद्विपलमानतः॥३५॥
शिवकुम्भं च सामान्यमर्घ्यपात्रं तथैव च।
स्थूलोदरं तथा कुर्यान्मुखग्रीवाविभूषितम्॥३६॥
पाद्यार्घ्याचमनाख्यानि चतुरस्राणि कारयेत्।
त्यागज्ञानानन्दकानि वर्तुलानीतराणि च॥३७॥
गन्धादिपात्रं कुर्वीत वृत्तमष्टदलान्वितम्।
दीपपात्राणि कुर्याच्च डमर्वाकारवन्ति च॥३८॥
त्रिमुखीं षण्मुखीमेकमुखीं नीराजनाय च।
छत्रं संपादयेद् धीमान् मुक्ताजालविभूषितम्॥३९॥
सौवर्णादेरलाभे तु किंशुकैः खड्गशृङ्गतः।
अथ यज्ञीयवृक्षेण मृदा पात्रं तु कारयेत्॥४०॥

शङ्ख, दर्पण, छत्र, चामर, ताड़ का पंखा इनको एकत्र करके इष्टलिङ्ग रूपी शिव की पूजा करे॥३३॥ शिवकुम्भ नामक पात्र बीस पल[६] (पल=करीब दो रत्ती) का, सामान्य अर्घ्य पात्र दस पल का॥३४॥ पाद्यार्घ्य और आचमन के पात्र प्रत्येक साढ़े सात पल के, त्याग, ज्ञान और आनन्द नामक पात्र, प्रत्येक पांच पल के, आधार कहे जाने वाले पात्र प्रत्येक ढाई पल के तौल के बनाए॥३५॥ शिवकुम्भ तथा सामान्य अर्घ्य पात्रों के पेट बड़े होने चाहिए और मुख और गले से सुशोभित होने चाहिए॥३६॥ पाद्यार्घ्य और आचमन के पात्र चौकोर बनवाए। त्याग, ज्ञान और आनन्द नामक पात्रों तथा अन्य पात्रों को गोलाकार बनवाए॥३७॥ गन्ध आदि के पात्र गोल तथा आठ दलों से युक्त हों। दीपक का पात्र डमरू के आकार का॥३८॥ नीराजन का पात्र एक, तीन अथवा छः मुखों वाला हो। धीमान् साधक मोतियों के जाल से विभूषित छत्र बनवाए॥३९॥ सुवर्ण आदि के पात्र न मिलने पर किंशुक (ढाक), गैंडे के सींग, यज्ञ में काम आने वाले वृक्षों[७] या मिट्टी के पात्र बनवाए॥४०॥

---

६. पल=वैद्यक शास्त्र में प्रचलित एक मान। कुछ लोगों के अनुसार एक पल ढाई माशे का होता है।
७. यज्ञ के कार्य में आने वाले पलाश, खदिर, शमी आदि वृक्ष।

पूजनविधिः

नदीतीरे तटाके वा स्वयंव्यक्तशिवस्थले।
विजने स्वगृहे वाऽपि यजेदेकाग्रमानसः ॥४१॥
विल्वाष्टोत्तरसाहस्रं शतमष्टोत्तरं तु वा।
द्रोणपुष्पसहस्रैर्वा पुष्पैर्वाथार्कसंभवैः ॥४२॥
आरग्वधसहस्रैर्वा नियमेनैव पूजयेत्।
शतमष्टोत्तरं वाऽपि चाष्टाविंशतिसंख्यया ॥४३॥
पूजाकाले बहुवचो यस्य तेन न संवसेत्।
शिवस्यैव पुराणानि श्रावयेच्छृणुयादपि।
लौकिकान्यकथालापं वर्जयेन्मम पूजकः ॥४४॥
स्वारामोद्भवपुष्पाणि प्रशस्तानि मदर्चने।
देवस्वं देवतोद्यानपुष्पाणि परिवर्जयेत्।
अन्यपूजार्हपुष्पाणि न च मह्यं समर्पयेत् ॥४५॥
समर्पणीयान्यन्येन न च पुष्पाणि याचयेत्।
याचनालब्धपुष्पाण्यप्रशस्तानि मदर्चने ॥४६॥
असन्निधाय नैवेद्यं धूपदीपौ न चाचरेत्।
धूपदीपौ समर्प्याथ न विलम्बेन्निवेदने ॥४७॥

नदी के किनारे, तालाब के किनारे, स्वयम्भू[८] शिव के स्थान पर या अपने ही निर्जन घर में एकाग्र चित्त होकर पूजा करे॥४१॥ एक हजार आठ या एक सौ आठ विल्वपत्रों से, एक हजार द्रोण या मन्दार के पुष्पों से॥४२॥ आरग्वध पुष्प जो एक हजार आठ या एक सौ आठ या अट्ठाइस संख्या में हों, नियमपूर्वक पूजा करे॥४३॥ पूजा के समय बकवास करने वाले व्यक्ति को साथ न रखे। शिव के पुराणों को सुने-सुनाए। पूजक सांसारिक बातें न करे॥४४॥ अपने बागीचे में उत्पन्न पुष्प शिव पूजा के लिए प्रशस्त होते हैं। देवता के उद्यान में उत्पन्न पुष्प देवता की अपनी सम्पत्ति है, उसका ग्रहण न करे। दूसरों की पूजा के योग्य फूलों का शिव को समर्पण न करे॥४५॥ दूसरे व्यक्तियों द्वारा चढ़ाए जाने वाले पुष्पों को न मांगे। शिव की पूजा में दूसरों से मांग कर लिये गये पुष्प श्रेष्ठ नहीं माने गये हैं॥४६॥ नैवेद्य को बिना देवता के सामने रखे दीप न दिखाए। धूप और दीप समर्पित करके नैवेद्य अर्पित करने में विलम्ब न करे॥४७॥ अभिषेक में कलश में दिव्य वस्तुओं को

---

८. प्रसिद्धि है कि विशेष स्थानों पर शिवलिङ्ग स्वतः उद्भूत हुए हैं, द्वादश ज्योतिर्लिङ्गों को स्वयम्भू लिङ्ग कहते हैं, क्योंकि किसी व्यक्ति ने उन्हें स्थापित नहीं किया है।

अभिषेकाय दिव्यानि द्रव्याणि कलशे क्षिपेत्।
एलोशीरलवङ्गानि कस्तूरीं चन्द्रसंज्ञकम्।
पञ्चद्रव्याणि कलशे चूर्णयित्वा विनिक्षिपेत्॥४८॥
सिद्धार्थान् कुङ्कमं दूर्वां कुष्ठं चन्दनभस्मनी।
चन्द्रं च कुसुमं चैव पाद्यपात्रे विनिक्षिपेत्॥४९॥
सिद्धार्थांश्च कुशाग्राणि यवव्रीहितिलान्यपि।
चन्दनं भस्म कुसुममर्घ्यपात्रे विनिक्षिपेत्॥५०॥
त्रिफलाजातिकर्पूरकुष्ठकोशीरमेव च।
भस्मचन्दनपुष्पाणि पात्रे ह्याचमने क्षिपेत्।
भस्मचन्दनपुष्पाणि पात्रेष्वन्येषु निक्षिपेत्॥५१॥
त्यागपात्रे कदुष्णं च ज्ञानपात्रे सचन्दनम्।
आनन्दपात्रे शीतं च जलमापूरयेत् तथा॥५२॥
निमीलयन्नेत्रयुग्मं ध्यानं सम्यक् समाचरेत्।
ध्यानकाले पुराणादिश्रवणं नैव कारयेत्।
एकान्ते मीलिताक्षेण ध्यानं कार्यं विपश्चिता॥५३॥
अभिषेके पुराणादिश्रवणं नेतरत्र तु।
मनोदार्ढ्येन सम्पन्नः पूजयेन्मां दृढव्रतः॥५४॥
अलङ्कारप्रियो विष्णुरभिषेकप्रियोऽस्म्यहम्।
नमस्कारप्रियो भानुर्मम स्तोत्रप्रिया गणाः॥५५॥

डाले— इलायची, खश, लवंग, कस्तूरी, कर्पूर इन दिव्य वस्तुओं का चूर्ण बनाकर कलश में डाले॥४८॥ सिद्धार्थ (सरसों), कुङ्कुम, दूर्वा, कुष्ठ (कुठ), चन्दन, भस्म, कर्पूर और पुष्प पात्र में डाले॥४९॥ सिद्धार्थ, कुशा का अग्र भाग, जौ, धान, तिल, चन्दन, भस्म और पुष्प अर्घ्यपात्र में डाले॥५०॥ त्रिफला[१], जाति (जायफल), कर्पूर, कुष्ठ, खश, भस्म, चन्दन और पुष्प आचमनीय में डाले। अन्य पात्रों में भस्म, चन्दन और पुष्प डाले॥५१॥ त्यागपात्र में थोड़ा गरम जल, ज्ञानपात्र में थोड़ा गरम जल चन्दन के साथ और आनन्दपात्र में शीतल जल भरे॥५२॥ नेत्रों को मूंदकर अच्छी प्रकार ध्यान करे। ध्यान के समय पुराणादि न सुने। विद्वान् साधक आंखे बन्द कर एकान्त में ध्यान करे॥५३॥ अभिषेक में पुराणादि का श्रवण करे, अन्य कार्य करते समय नहीं। मन को दृढ़ करके, दृढ़व्रत होकर शिव की पूजा करे॥५४॥ विष्णु को अलङ्करण प्रिय है, शिव को अभिषेक प्रिय है, सूर्य को नमस्कार

---

१. त्रिफला— छोटी हरड, बहेड़ा और आंवला के फल।

स्तोत्रपाठो विशेषेण मम तु प्रीतिवर्धनः।
स्तोत्रमात्रेण संतुष्टस्त्वहमिष्टफलप्रदः ।।५६।।
ध्यानेन सकलं पापं नश्येद् भक्तार्जितं तु यत्।
ध्यानानुगुणमेवान्यन्मुख्यं ध्यानं प्रकीर्तितम् ।।५७।।
सौवर्णौ च कटाहौ द्वौ शुद्धतोयेन पूरितौ।
गन्धद्रव्येण मिश्रौ च कृत्वा मामभिपूजयेत् ।।५८।।
एलालवङ्गजातीयफलपुष्पाण्युशीरकम् ।
लवङ्गत्वग्जाटामांस्यौ तक्कोलं कुष्ठमेव च ।।५९।।
कदम्बकन्दं गन्धत्वङ्ङ नागकेसरचम्पकान्।
देवदारुं गुग्गुलुं च कौङ्कुमं पुष्पमेव च ।।६०।।
गोरोचनं च कर्पूरं तथा सर्वमणिं समम्।
चूर्णयित्वा विशेषेण कस्तूरीं च विनिक्षिपेत्।
सर्वद्रव्याणि निक्षिप्य पूजयेल्लिङ्गरूपिणम् ।।६१।।
सर्वद्रव्येष्वलब्धेषु कस्तूरीकुङ्कुमान्वितम्।
कर्पूरं चैव पूजार्थं संपाद्य परिपूजयेत्।
एलोर्शीरैर्दरिद्रश्चेन्न केवलजलैर्यजेत् ।।६२।।

प्रिय है और शिवगणों को शिवस्तोत्र प्रिय हैं।।५५।। स्तोत्र-पाठ विशेष रूप से शिव की प्रीति बढ़ाता है। केवल स्तोत्र से सन्तुष्ट होकर शिव अभीष्ट प्रदान करते हैं।।५६।। भक्त द्वारा अर्जित सारे पाप ध्यान और ध्यान के समान अन्य साधनों से नष्ट हो जाते हैं, पर ध्यान को मुख्य माना गया है।।५७।। सोने से बनी दो कढ़ाहियों को शुद्ध जल में गन्धद्रव्य मिश्रित करके भर दे और उससे शिव की पूजा करे।।५८।। इलायची, लवंग, जाति के फल-पुष्प, खश, लवंग की छाल, जटामांसी, तक्कोल, कुष्ठ।।५९।। कदम्ब का कन्द, गन्ध की छाल, नागकेसर, चम्पक, देवदारु, गुग्गुल, केशर का फूल।।६०।। गोरोचन, कर्पूर और सर्वमणियों[१०] को बराबर मात्रा में लेकर चूर्ण कर ले और थोड़ी कस्तूरी डालकर सभी द्रव्यों से शिव की पूजा करे।।६१।। यदि ये सारे द्रव्य न मिलें, तब कस्तूरी, केशर और कर्पूर के साथ मिलाकर पूजन करे। यदि गरीब भक्त हो तो वह इलायची और खश मिलाकर पूजन करे। केवल जल से पूजन न करे।।६२।। शिव की पूजा में जितनी ही विशिष्ट सामग्री

---

१०. सर्वमणि संभवतः किसी फल का नाम मालूम होता है।

यथा यथा च सामग्री विशिष्येत मदर्चने।
तथा तथा फलं प्रोक्तं भक्तानां किल्बिषं नहि ।।६३।।
दीपारार्तिं प्रकुर्वीत सौवर्णै राजतैरथ।
सपुष्पमर्पयेद् भक्तः स्वस्य विज्ञानसिद्धये ।।६४।।
ज्ञानसिद्धिर्भवेन्नृणां मयि दीपसमर्पणात्।
विशेषात् सोमवारे च दीपदर्शनमाचरेत् ।।६५।।
कार्तिके सोमवारे तु दीपावलिसमर्पणात्।
न पुनर्जायते भक्तो मम सायुज्यमाप्नुयात् ।।६६।।
प्रदोषे सोमवारे तु लक्षदीपसमर्पणात्।
फलं वक्तुं न शक्येत सोऽहमेवेति निश्चितम्।
तस्मादज्ञाननाशाय दीपार्चनमथाचरेत् ।।६७।।
नमस्काराष्टकं कुर्यादष्टोत्तरशतं तु वा।
सहस्रं वा प्रकुर्वीत नमस्कारप्रियोऽस्म्यहम् ।।६८।।
करपीठे समभ्यर्च्य साम्बं मां लिङ्गरूपिणम्।
अथ भक्तो नमस्कारं कण्ठोर्ध्वं तु विभावयेत् ।।६९।।
मुक्ताङ्गुष्ठेन मुष्ट्या च प्रदक्षिणविधानवान्।
प्रार्थयेन्मां महेशानि यथाकाममतन्द्रितः ।।७०।।

होगी, वैसा ही फल मिलना बतलाया गया है। विशेष सामग्री से पूजा करने वाले भक्तों को पाप नहीं लगता ।।६३।। सोने या चांदी के दीप-पात्र से आरती करे। अपने ज्ञान की सिद्धि के लिये भक्त पुष्प समर्पित करे ।।६४।। शिव को दीप समर्पित करने से भक्त को ज्ञान-सिद्धि प्राप्त होती है। विशेष रूप से सोमवार को दीप समर्पित करे ।।६५।। कार्तिक मास के सोमवार को दीपावली समर्पित करने से भक्त का पुनर्जन्म नहीं होता, वह शिव-सायुज्य पाता है ।।६६।। सोमवार युक्त प्रदोष[११] में एक लाख दीप समर्पित करने से जो फल मिलता है, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। वह फल शिव ही हैं। अतः अज्ञान का नाश करने के लिए दीपार्चन करे ।।६७।। आठ बार या एक सौ आठ बार या एक हजार बार नमन करे, क्योंकि मैं नमस्कार से प्रसन्न होता हूँ ।।६८।। हथेली पर अम्बा सहित इष्टलिङ्गरूपी शिव की पूजा करने के बाद उसे कण्ठ के ऊपर ले जाकर मेरी भावना करे ।।६९।। अंगूठे को छोड़ शेष उंगलियों की मुट्ठी बांध कर प्रदक्षिणा की विधि करता हुआ भक्त, हे महेशपत्नि! बिना आलस्य जब तक चाहे शिव की प्रार्थना करे ।।७०।। उन्मनी मुद्रा से युक्त

११. रात्रि के प्रारम्भ होने का काल। अमरकोश - प्रदोषो रजनीमुखम् १.४.६

अर्घ्यं चाप्युन्मनीमुद्रासमन्वितकराम्बुजः।
चिन्मुद्रया च पुष्पाणि पत्राणि च समर्पयेत्॥७१॥
छत्रेणाच्छादयेत्पश्चाच्चामरेणापि वीजयेत्।
तालवृन्तेन चाप्येवं दर्पणं दर्शयेदपि॥७२॥
घण्टारवं कारयेच्च शङ्खमाध्मापयेदपि।
गीतानि श्रावयेदेव वाद्यं नृत्यं समर्पयेत्॥७३॥

पूजागृहविधानम्

शिवपूजागृहं शुद्धं श्वेतचूर्णेन लेपितम्।
गोमयेनोपलिप्तं च रङ्गवल्याद्यलङ्कृतम्॥७४॥
पुष्पैः पर्णैरलङ्कृत्य मल्लीझिल्लीं प्रसारयेत्।
सुगन्धद्रव्यचूर्णैश्च धूपयेद् देवतागृहम्॥७५॥
नीडानि भित्तौ कुर्वीत नानावर्णलसन्ति च।
विन्यसेद् विग्रहानाशु तेषु मामककिङ्करान्॥७६॥
सायुधान् वाहनैर्युक्तानलङ्कारविभूषितान्।
भस्मत्रिपुण्ड्ररुद्राक्षभास्वद्देहान् कपर्दिनः॥७७॥
अथवा भूतिरुद्राक्षान् तेषु नीडेषु निक्षिपेत्।
मम पूजार्थसामग्रीमथवा विन्यसेद् बुधः।
तेषु तेषु च नीडेषु दीपमालां च कल्पयेत्॥७८॥

हाथ से अर्घ्य, चित् मुद्रा से पुष्प और पत्र समर्पित करे॥७१॥ बाद में छत्र से आच्छादन करके चांवर डुलाए। इसी प्रकार ताड़ के पंखे से भी हवा करे। दर्पण भी दिखलाए॥७२॥ घंटा और शङ्ख बजाए, गीत सुनाए, वाद्य और नृत्य समर्पित करे॥७३॥

शिव का पूजागृह शुद्ध हो। सफेद चूने से पुता, गोबर से लीपा गया हो। रंगोली आदि से सजाया गया हो॥७४॥ फूलों पत्तों से गृह को सजाकर मल्ली-झिल्ली[१२] फैलाए। देवता-गृह को सुगन्धित द्रव्यों के चूर्ण से धूपित करे॥७५॥ दीवारों पर आले बनाकर अनेक रंगों से उन्हें अलङ्कृत करें। उनमें शिव के किंकरों को॥७६॥ आयुधों, वाहनों, अलङ्कारों से सुशोभित, भस्म, त्रिपुण्ड्र, रुद्राक्षों से युक्त चमकते शरीर वाले बनाकर स्थापित करे॥७७॥ अथवा भस्म, विभूति और रुद्राक्षों को

---

१२. मल्ली-झिल्ली—संभवतः बेला का बनाया बन्दनवार। झिल्ली देशज शब्द प्रतीत होता है।

पूजनकर्मसम्पादनम्

तस्मिन् सुसदने देवि सुखासीनः शुभासने।
भस्मत्रिपुण्ड्ररुद्राक्षमालिकासमलङ्कृतः ॥७९॥
भद्रादिमण्डलन्यस्तसर्वोपकरणाश्रितः ।
सकलीकृतदेहश्च कृतपारिषदस्तुतिः ॥८०॥
अग्रे सिंहासनवरं विभाव्य समलङ्कृतम्।
भस्मशय्याश्रितं तत्र करपीठं विधाय च॥८१॥
तस्मिन्निक्षिप्य मां नित्यं षट्त्रिंशदुपचारकैः।
ऋग्यजुःसामवेदैश्च तथाऽथर्वणमन्त्रतः ॥८२॥
पञ्चाक्षरोपनिषदा पुराणश्रवणादिना।
शास्त्राणां पठनेनापि गद्यपद्यस्तुतिव्रजैः ॥८३॥
गायेत् स्वयं गापयेच्च मम माहात्म्यसूचकैः।
वाद्यैश्च विविधैर्गीतैर्नृत्यैर्मां परितोषयेत्॥८४॥

उन आलों में रखे। या फिर विद्वान् साधक शिव की पूजन सामग्री उनमें रखे। उन आलों में दीपमाला जलाए॥७८॥

हे देवि! साधक भस्म, त्रिपुण्ड्र और रुद्राक्षों की माला से अलंकृत होकर उस सुन्दर गृह में शुभ आसन पर सुखासन से बैठे॥७९॥ भद्र आदि मण्डलों में सारे उपकरणों को रखकर, देह को सकलीकृत[१३] करके, शिवगणों की स्तुति करके॥८०॥ अपने सामने श्रेष्ठ अलङ्कृत सिंहासन की कल्पना करे। हथेली पर भस्म की शय्या बनाकर॥८१॥ इष्टलिङ्ग को उसपर रखकर छत्तीस उपचारों[१४] से पूजन करे। ऋक्, यजुष्, साम, अथर्व वेदों के मन्त्रों से॥८२॥ पञ्चाक्षर-उपनिषदों[१५] ,पुराणों के श्रवण आदि से, शास्त्रों के पठन से पूजन करता हुआ गद्य-पद्य मय स्तुतियों॥८३॥ का स्वयं गायन करे और दूसरों से गवाए, जिनसे शिव का माहात्म्य सूचित होता हो। नाना प्रकार के वाद्यों, विविध गीतों और नृत्यों से शिव को सन्तुष्ट करे॥८४॥

---

१३. सकलीकृत, शरीर को शैवी कलाओं से न्यस्त करना सकलीकरण कहलाता है।

१४. उपचार पूजन—ये छत्तीस प्रकार के बतलाए गए हैं।

१५. पञ्चाक्षरोपनिषद् = नमः शिवाय इस पञ्चाक्षर मन्त्र को ही उपनिषद् कहा गया है, क्योंकि यह मन्त्र समस्त वेदों का सारभूत रहस्य है।

एकादिक्रमशो मह्यं दद्यादारार्तिकान् नव।
जाघण्टाशङ्खनादैश्च कोलाहलरवैरपि ।।८५।।
शब्दब्रह्मानन्दमयो मदानन्दामृतप्लुतः।
निमज्जन्निव संतुष्टो निःसंज्ञ इव तत्परः ।।८६।।
यः सकृद्वाऽसकृद्वाऽपि मामर्चयति यः स्वयम्।
स धन्यः सर्वलोकानां वन्द्यो भक्तोत्तमोत्तमः।
तं दृष्ट्वा मोदते यस्तु तस्मादप्यधिको भवेत् ।।८७।।
यः स्वकीयगृहे नित्यं मद्भक्तानां विशेषतः।
पूजोपकरणं दत्त्वा कारयेत् तैर्मदर्चनम्।
स याति मम सायुज्यं ज्ञानिनामपि दुर्लभम् ।।८८।।
इत्थमुक्तं मया तुभ्यं लोकानां मुक्तिसिद्धये।
पात्रादिसादनं देवि किमतः श्रोतुमिच्छसि ।।८९।।

इति श्रीकारणागमे उत्तरभागे पार्वतीपरमेश्वरसंवादे क्रियापादे
पूजापात्रादिलक्षणकथनं नाम पञ्चमः पटलः ।।५।।

एक से क्रमशः नौ बार शिव की आरती करे, साथ में जाघंटा[१६] तथा शङ्ख बजाए और कोलाहल करे।।८५।। शब्दब्रह्म के आनन्द में डूबा, शिव के आनन्द रूपी अमृत से सिक्त, मानों इसमें डूबा हुआ, सन्तुष्ट, संज्ञा-रहित जैसा उसी आनन्द में भूला हुआ।।८६।। जो भक्त एक या अनेक बार स्वयं शिव की पूजा करता है, वह धन्य है, भक्तों में सर्वोत्तम है, सबके द्वारा वन्दनीय है। उसको देखकर जो आनन्दित होता है वह उससे भी बड़ा है।।८७।। जो अपने घर में, खास कर शिव के भक्तों को पूजा के उपकरण देता है और उनके द्वारा शिव की पूजा करवाता है, वह शिव-सायुज्य पाता है, जो ज्ञानियों के लिए भी दुर्लभ है।।८८।। इस प्रकार मैंने तुम्हें लोगों की मुक्ति-सिद्धि के लिए पात्रादि का साधन बतलाया। हे देवि! अब तुम क्या सुनना चाहती हो ?।।८९।।

श्रीकारणागम के उत्तरभाग में श्रीपार्वतीपरमेश्वरसंवादरूपक्रियापादान्तर्गत
पूजापात्रादिलक्षणकथन नामक पञ्चम पटल समाप्त हुआ।।५।।

---

१६. जाघंटा अर्थात् बड़ा घंटा।



षष्ठः पटलः

देव्युवाच

चन्द्रशेखर भूतेश पिनाकिन्नुग्र शङ्कर।
अवसरादिपूजानां कल्पं ब्रूहि विशेषतः॥१॥

महादेव उवाच

अवसरपूजाकल्पः

अथावसरपूजायाः कल्पं वक्ष्ये शृणु प्रिये।
मण्डलं परिकल्प्यादौ दीपं प्रज्वालयेत् ततः॥२॥
परिगृह्य गणानुज्ञां घण्टानादपुरस्सरम्।
मन्नामभिः समाचम्य प्राणानायम्य शक्तितः॥३॥
संकीर्त्य देशकालौ च कलशं सम्यगर्चयेत्।
अष्टोत्तरशतान्यूनां जपेन्मम षडक्षरीम्॥४॥
सर्वलिङ्गं स्थापयतीति लिङ्गं विन्यसेत् करे।
नीराजनं दर्शनाख्यमसौ य इति दर्शयेत्॥५॥

देवी ने कहा —

हे चन्द्रशेखर, भूतेश, पिनाकिन्, उग्र शङ्कर! अवसरा आदि पूजाओं का विशेष रूप से विधान बताइए॥१॥

महादेव ने कहा —

प्रिये! सुनो अब अवसरा पूजा का प्रकार बतलाता हूँ। पहले मण्डल बनाकर फिर दीप जलाए॥२॥ गणों की आज्ञा लेकर घंटा बजाते हुए मेरे नामों से आचमन करके शक्ति के अनुसार प्राणायाम करे॥३॥ सङ्कल्प में देश-काल का निर्देश करने के बाद कलश का भली भांति पूजन करे। शिव के षडक्षर मन्त्र (ॐ नमः शिवाय) का कम से कम एक सौ आठ बार जप करे॥४॥ सर्वलिङ्ग की स्थापना की भावना करते हुए हथेली पर इष्टलिङ्ग को रखे। "असौ यः"[१] इस मन्त्र से दर्शन नामक नीराजन करे॥५॥ "यो वै रुद्रः स भगवान् पृथ्वी"[२] इस मन्त्र से भस्म छिड़के।

---

१. असौ योऽवसर्पति नीलग्रीवो विलोहितः। उतैनं गोपा अदृश्रन्नदृश्रन्नुदहार्यः स दृष्टो मृडयाति नः॥ (शु. य. १६.७)।

२. यो वै रुद्रः स भगवान् पृथ्वी (रुद्रोपनिषद्)।

योो वै रुद्रः स भगवान् पृथ्वीत्यभ्युक्ष्य भस्मना।
एतावानस्य महिमेत्यामनन् पाद्यमर्पयेत्॥ ६॥
हंसः शुचिषदित्यर्घ्यं सावित्र्याऽऽचमनीयकम्।
नमः सोमाय चेत्येवं स्नानं च परिकल्पयेत्॥ ७॥
स्नानोदकं शिरस्युक्ष्य लिङ्गतीर्थं प्रगृह्य च।
ऋतं सत्यमिति प्राश्य वस्त्रं यस्तन्त्विति ब्रुवन्॥ ८॥
अग्निरित्यादिभिर्भस्म सर्वतो लेपयेत् सुधीः।
गन्धेति गन्धमादद्यादाकाशादिति चाक्षतान्॥ ९॥
निधनपतय इति पुष्पाणि च समर्पयेत्।
विल्वं त्रियम्बकमिति यच्च व्योमेति धूपकम्॥१०॥

"एतावानस्य महिमा"[३] इस मन्त्र का मनन करते हुए पाद्य समर्पित करे॥६॥ "हंसः शुचिषद्"[४] मन्त्र से अर्घ्य, गायत्री मन्त्र से आचमनीय, "नमः सोमाय च"[५] इस मन्त्र से इष्टलिङ्ग को स्नान कराए॥७॥ स्नान के जल को सिर पर छिड़कर इष्टलिङ्ग के तीर्थ का ग्रहण करने के बाद "ऋतं सत्यम्"[६] इस मन्त्र से उसको पी जाए। "यस्तन्तु" मन्त्र को पढ़ते हुए वस्त्र प्रदान करे॥८॥ सुधी पूजक "अग्नि"[७] इत्यादि मन्त्रों से इष्टलिङ्ग के चारों ओर भस्म का लेपन करे। "गन्ध" इस मन्त्र से गन्ध को समर्पित करे। "आकाशात्" मन्त्र से अक्षत॥९॥ "निधनपतये"[८]

---

३. एतावानस्य महिमा अतो ज्यायांश्च पूरुषः। पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि॥ (शु. य. ३१.३१)।

४. हंसः शुचिसद् वसुरन्तरिक्षसद् होता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत्। नृषद्वरसद् ऋतसद् व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं बृहत्॥ (शु. य. १०.२४)।

५. नमः सोमाय च रुद्राय च नमस्ताम्राय चारुणाय च। (शु. य. १६.३९)।

६. ऋतं सत्यं परं ब्रह्म पुरुषं कृष्णपिङ्गलम्। ऊर्ध्वरेतं विरूपाक्षम्। (तैत्तिरीय आरण्यक १०.१२.१)।

७. अग्निरिति भस्म वायुरिति भस्म जलमिति भस्म स्थलमिति भस्म व्योमेति भस्म सर्वं ह वा इदं भस्म मन एतानि चक्षूंषि भस्मानि॥ (जाबालोपनिषद्,६)।

८. निधनपतये नमः। निधनपतान्तिकाय नमः (महाना. उप. १४.१)।

महानीराजनं दद्यान्न तत्रेति मनुं स्मरन्।
दद्यादवसरं नैवेद्यमाचारादिलिङ्गकैः ॥११॥
ईशान इति मन्त्रेण मन्त्रपुष्पं समर्पयेत्।
वस्त्रप्रावरणं कुर्यात् सोऽब्रवीदिति मन्त्रतः।
अणोरणीयानिति च लिङ्गं स्वाङ्गे निवेशयेत् ॥१२॥

लघ्वर्चाविधिः

अथ वक्ष्यामि देवेशि लघुमर्चाविधिं शृणु।
स्नातः शुचिर्यतमनाः कृतभस्मावगुण्ठनः ॥१३॥
धृतत्रिपुण्ड्रो रुद्राक्षमालालङ्कृतविग्रहः।
आचम्य दीपं प्रज्वाल्य संप्रार्थ्य च गणान्मम ॥१४॥
आचम्य प्राणानायम्य देशकालौ प्रकीर्त्य च।
संभवद्भिरिह द्रव्यैरिष्टलिङ्गस्य पूजनम् ॥१५॥

मन्त्र से पुष्प समर्पित करे। "त्रियम्बकम्"[९] मन्त्र से विल्वपत्र, "यच्च व्योम" मन्त्र से धूप ॥१०॥ तथा "न तत्र"[१०] इस मन्त्र का स्मरण करते हुए महानीराजन समर्पित करे। "आचारादि" नाम से जाने मन्त्रों से अवसर नैवेद्य प्रदान करे ॥११॥ "ईशान"[११] मन्त्र से मन्त्रपुष्प समर्पित करे। "सोऽब्रवीत्" मन्त्र पढ़ते हुए वस्त्र से इष्टलिङ्ग को लपेटे। "अणोरणीयान्"[१२] इस मन्त्र से इष्टलिङ्ग को अपने अंग में बांध ले ॥१२॥

हे देवि! मैं अब छोटी अर्चा की विधि बतलाता हूँ, सुनो। स्नान करके पवित्र होने के बाद मन को नियन्त्रित करे, भस्म लपेटे ॥१३॥ त्रिपुण्ड्र धारण करे। रुद्राक्ष की माला से शरीर को सजाने के बाद आचमन करे। दीपक जला कर शिव के गणों की प्रार्थना के अनन्तर ॥१४॥ आचमन पूर्वक प्राणायाम करने के बाद देश-काल का निर्देश करे। फिर वहाँ जो भी द्रव्य संभव है, उनसे इष्टलिङ्ग का पूजन करूँगा ॥१५॥

---

९. त्रियम्बकं यजामहे सुगधिं पुष्टिवर्धनम्। उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्॥ (शु. य. ३.६०)।

१०. न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः। तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति॥ (कठोपनिषद्, ५.१५)।

११. ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानां ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोऽधिपतिर्ब्रह्मा शिवो मे अस्तु सदाशिवोम्॥ (महानारायणोपनिषद्, १०.४)।

१२. अणोरणीयान् महतो महीयान् नात्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम्। तमक्रतुं पश्यति वीतशोको धातुः प्रसादान्महिमानमीशम्॥ (कठोपनिषद्, २.२०)।

करिष्य इति संकल्प्य संपूज्य कलशं तथा।
षडक्षरजपं कुर्यादष्टोत्तरशतं बुधः ॥१६॥
इष्टलिङ्गं करे धृत्वा सर्वलिङ्गमनुं पठन्।
आवाहयेच्च वेदाहं भावग्राह्यमिति ब्रुवन्।
नीराजनं दर्शनाख्यमसौ य इति दर्शयेत् ॥१७॥
यो वै रुद्रः स भगवान् पृथ्वीत्यभ्युक्ष्य भस्मना।
एतावानस्य महिमेत्यामनन् पाद्यमर्पयेत् ॥१८॥
हंसः शुचिषदित्यर्घ्यं सावित्र्याऽऽचमनीयकम्।
यो वै रुद्रः स भगवानाप इत्यभिषिच्य च ॥१९॥
लिङ्गतीर्थं च संगृह्य कद्रुद्रायेति मन्त्रयन्।
ऋतं सत्यमिति प्राश्य पुष्पं धूपं समर्प्य च ॥२०॥
यो वै रुद्रः स भगवान् यश्चाग्निरिति मन्त्रतः।
दत्त्वा चावसराभिख्यं नीराजनमपि प्रिये।
फलाद्यवसरं दद्याद् भस्म लिङ्गोपरि क्षिपेत् ॥२१॥
मूलेन पुष्पं निक्षिप्य धूपमाघ्रापयेत् प्रिये।
असौ योऽवसर्पतीति मन्त्रमेनमनुस्मरन्।
नीराजनं मज्जनाख्यं दर्शयेद् गिरिनन्दिनि ॥२२॥

ऐसा संकल्प करके तथा कलश का पूजन करके जानकार साधक एक सौ आठ बार षडक्षर मन्त्र का जप करे ॥१६॥ हथेली पर इष्टलिङ्ग को रखते हुए "सर्वलिङ्ग"[१३] इस मन्त्र का पाठ करते हुए "वेदाहं भावग्राह्यं" इस मन्त्र का उच्चारण करते हुए आवाहन करे। "असौ यः" इस मन्त्र से नीराजन करे ॥१७॥ "यो वै रुद्रः स भगवान् पृथ्वी" इस मन्त्र से भस्म छिड़ककर "एतावानस्य महिमा" मन्त्र का पाठ करते हुए पाद्य समर्पित करे ॥१८॥ "हंसः शुचिषद्" मन्त्र से अर्घ्य, गायत्री से आचमनीय, "यो वै रुद्रः स भगवान् आपः"[१४] इस मन्त्र से अभिषेक करे ॥१९॥ लिङ्ग-तीर्थ को लेकर "कद्रुद्राय" मन्त्र पढ़ता हुआ "ऋतं सत्यम्" मन्त्र से प्राशन करके धूप, दीप, पुष्प समर्पित करे ॥२०॥ "यो वै रुद्रः स भगवान् यश्चाग्निः" इस मन्त्र से अवसर नामक नीराजन करे। हे प्रिये !फलादिक अवसर देकर इष्टलिङ्ग के ऊपर भस्म छिड़के ॥२१॥ मूल मन्त्र से पुष्प चढ़ाकर धूप दे। "असौ योऽवसर्पति"[१५]

---

१३. सर्वलिङ्गं स्थापयति। लिङ्गोपनिषद्

१४. यो वै रुद्रः स भगवान् याश्चापः। रुद्रोपनिषद्।

१५. दे. ऊपर टिप्पणी १

एतावानस्य महिमेत्यामनन् पाद्यमर्पयेत्।
हंसः शुचिषदित्यर्घ्यं सावित्र्याऽऽचमनीयकम्॥२३॥
रुद्राध्यायेनाभिषेकमावहन्तीति मन्त्रतः।
वस्त्रेणोद्वर्तनं कृत्वा लिङ्गतीर्थं प्रगृह्य च।
कद्रुद्रायेति संमन्त्र्य प्राश्नीत ऋतमित्यपि॥२४॥
यो वै रुद्र इति पठन् दद्यादङ्गारतापनम्।
यो वै रुद्रः स भगवान् यश्चाग्निरिति धूपनम्॥२५॥
उद्दीप्यस्वेति च पठन् माङ्गल्याख्यं च दर्शयेत्।
वस्त्रं समर्पयेद् देवि यस्तन्त्विति मनुं पठन्॥२६॥
अग्निरित्यादिभिर्मन्त्रैः सजलं भस्म चार्पयेत्।
नमो हरिकेशायेति यज्ञसूत्रं समर्पयेत्॥२७॥
यो वै रुद्रो या च पृथ्वीत्युक्त्वा गन्धांश्च साक्षतान्।
आकाशादिति मन्त्रेण दद्यात् केवलमक्षतान्॥२८॥

मन्त्र का स्मरण करते हुए, हे पार्वति! मज्जन नामक नीराजन दिखाए॥२२॥ "एतावानस्य महिमा" मन्त्र का स्मरण करते हुए पाद्य अर्पित करे। "हंसः शुचिषद्" मन्त्र से अर्घ्य, गायत्री से आचमनीय, ॥२३॥ "रुद्राध्याय"[१६] से अभिषेक, "आवहन्ति" मन्त्र को स्मरण करते हुए वस्त्र लपेट कर "कद्रुद्राय" मन्त्र लिङ्ग-तीर्थ को लेकर पढ़े और 'ऋतम्" मन्त्र से उसका प्राशन करे॥२४॥ "यो वै रुद्रः" मन्त्र पढ़ते हुए इष्टलिङ्ग को अंगार से तपाए, तदनन्तर "यो वै रुद्रः स भगवान् यश्चाग्निः" इस मन्त्र से धूपदान करे॥२५॥ "उद्दीप्यस्व" मन्त्र का पाठ करते हुए माङ्गल्य नामक नीराजन दिखाए "यस्तन्तु" मन्त्र का पाठ करते हुए, हे देवि! वस्त्र चढाए॥२६॥ "अग्नि" आदि मन्त्रों से जल सहित भस्म चढ़ाए। "नमो हरिकेशाय"[१७] इस मन्त्र से यज्ञोपवीत समर्पित करे॥२७॥ "यो वै रुद्रो या च पृथ्वी"[१८] इस मन्त्र को पढ़कर अक्षत के साथ गन्ध समर्पित करे। "आकाशात्" मन्त्र से केवल अक्षत चढाए॥२८॥

---

१६. रुद्राध्याय—शुक्ल यजुर्वेद संहिता, १६वां अध्याय।
१७. नमो हिरण्यबाहवे सेनान्ये दिशां च पतये नमः (शु. य. १६.१७)।
१८. यो वै रुद्रो या च पृथ्वी। रुद्रोपनिषद्।

सर्वव्यापिनमिति कर्पूरनीराजनं दिशेत्।
तदेवर्तं भुवन्तय इति माल्यानि चार्पयेत्॥२९॥
या ते रुद्र शिवा तनूः शिवा विश्वाहभेषजी।
इति नीराजनं दद्याच्छृङ्गाराख्यं महेश्वरि॥३०॥
यो वै रुद्रः स भगवान् यश्च सूर्य इति क्रमात्।
निधनपतय इति चाष्टोत्तरशतेन च।
पुष्पाणि त्र्यम्बकमिति विल्वपत्राणि चार्पयेत्॥३१॥
नम ईध्रियाय चेति श्वेतच्छत्रं समर्पयेत्।
नमो वात्याय चेत्येवं चामरं परिकल्पयेत्॥३२॥
चन्द्रमा मनसो जात इति व्यजनमर्पयेत्।
स यश्चायं पुरुष इत्यर्पयेद् दर्पणं तथा॥३३॥
यो वेदादाविति पठन् घण्टानादं च श्रावयेत्।
अध्यवोचदधित्येवं शङ्खं सम्यङ् निनादयेत्॥३४॥

"सर्वव्यापिनम्" मन्त्र से कर्पूर नीराजन करे। "तदेवर्तं भुवन्तये" इस मन्त्र से माला आदि चढ़ाए॥२९॥ हे महेश्वरि! "या ते रुद्र शिवा तनूः शिवा विश्वाहभेषजी"[१९] इस मन्त्र से शृंङ्गार नामक नीराजन करे॥३०॥ "यो वै रुद्रः स भगवान् यश्च सूर्यः"[२०] और फिर "निधनपतये" इन मन्त्रों को क्रम से पढ़ते हुए एक सौ आठ पुष्प समर्पित करे। "त्र्यम्बकम्"[२१] मन्त्र से विल्वपत्र समर्पित करे॥३१॥ "नम ईध्रियाय"[२२] मन्त्र से श्वेत छत्र समर्पित करे। "नमो वात्याय"[२३] मन्त्र से चंवर डुलाए॥३२॥ "चन्द्रमा मनसो जातः"[२४] मन्त्र से पंखा झले। "स यश्चायं पुरुषः" मन्त्र से दर्पण दिखाए॥३३॥ "यो वेदादौ"[२५] मन्त्र का पाठ करते हुए घंटा स्वर सुनाए। "अध्यवोचदधि"[२६]

---

१९. या ते रुद्र शिवा तनूरघोरापापकाशिनी। तया नस्तन्वा शन्तमया गिरिशन्ताभिचाकशीहि॥ (शु. य. १६.२)।

२०. रुद्रोपनिषद्।

२१. दे. टिप्पणी सं. ९

२२. नम ईध्रियाय (रुद्राध्याय)

२३. नमो वात्याय च रेष्म्याय च नमो वास्तव्याय च वास्तुपाय च नमः सोमाय च रुद्राय च नमस्ताम्राय चारुणाय च॥ (शु. य. १६.३९)।

२४. चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत। श्रोत्राद् वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत॥ (शु. य. ३१.१२)।

२५. यो वेदादौ स्वरः प्रोक्तो वेदान्ते च प्रतिष्ठितः। तस्य प्रकृतिलीनस्य यः परः स महेश्वरः॥ (तै. आ. १०.१०.३)।

२६. अध्यवोचदधिवक्ता प्रथमो दैव्यो भिषक्। अहींश्च सर्वान् जम्भयन् सर्वाश्च यातुधान्योऽधराची परासुव॥ (शु. य. १६.५)।

शिवेन वचसा त्वेति गीतमाश्रावयेद् बुधः।
नमो दुन्दुभ्याय चेति वाद्यं कुर्याद् विचक्षणः।
नमो रुद्रायाततायिन इति नाट्यं च दर्शयेत्।।३५।।
उद्यन्तमिति मन्त्रेण बुधः कुर्यात् प्रदक्षिणम्।
यो रुद्रोऽग्नाविति पठन् नमस्कारं समर्पयेत्।।३६।।
नमो रुद्राय चेत्युक्त्वा स्तुतिपाठं पठेद् बुधः।
अजात इत्येवमिति पठन् याञ्चां विभावयेत्।।३७।।
यो वै रुद्रः स भगवान् यच्च व्योमेति धूपकम्।
न तत्र सूर्यो भातीति महानीराजनं दिशेत्।।३८।।

मन्त्र को पढ़कर अच्छी तरह शंख बजाए।३४।। "शिवेन वचसा त्वा"[२७] मन्त्र पढ़कर साधक गीत सुनाए। "नमो दुन्दुभ्याय च"[२८] मन्त्र पढ़कर वाद्यों को बजाए। "नमो रुद्रायाततायिने"[२९] मन्त्र पढ़कर शिव को नृत्य प्रदर्शित करे।।३५।। "उद्यन्तम्"[३०] मन्त्र से विद्वान् साधक प्रदक्षिणा करे। "यो रुद्रोऽग्नौ"[३१] मन्त्र पढ़ते हुए नमस्कार समर्पित करे।।३६।। "नमो रुद्राय च"[३२] मन्त्र कहकर स्तुति पाठ करे। "अजातः"[३३] इत्यादि मन्त्र पढ़ते हुए मांगने की भावना करे।।३७।। "यो वै रुद्रः स भगवान् यच्च व्योम"[३४] मन्त्र से धूप दे। "न तत्र सूर्यो भाति"[३५] मन्त्र से महानीराजन करे।।३८।।

---

२७. शिवेन वचसा त्वा गिरिशाच्छा वदामसि। यथा नः सर्वमिज्जगदयक्ष्मं सुमना असत्।। (शु.य. १६.४)।

२८. नमो दुन्दुभ्याय (रुद्राध्याय)।

२९. नमो रुद्रायाततायिने क्षेत्राणां पतये नमः सूतायाहन्त्यै वनानां पतये नमः। (शु.य. १६.१८)।

३०. उद्यन्तम्।

३१. यो रुद्रोऽग्नौ।

३२. नमो रुद्राय—दे. ऊपर टि. २९

३३. अजात इत्येवं कश्चिद् भीरुः प्रपद्यते। रुद्र यत्ते दक्षिणं मुखं तेन मां पाहि नित्यम्।। (श्वेताश्वतर उप. ४.२१)।

३४. रुद्रोपनिषद्।

३५. न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः। तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति।। (कठोपनिषद्, ५.१५)

अघोरेभ्योऽथ इति चाचारलिङ्गादिभि: क्रमात्।
चतुर्विधं च नैवेद्यमर्पयेत् साधकस्तत: ॥३९॥
भस्माभ्युक्ष्य महालिङ्गे ईशान इति मन्त्रत:।
मूलमन्त्रेण चाप्येवं मन्त्रपुष्पं समर्पयेत् ॥४०॥
यतो वाचो निवर्तन्त इति मन्त्रं पठन्नपि।
आनन्दाभिख्यकं नीराजनमप्यर्पयेत् तत: ॥४१॥
स विश्वेति च ताम्बूलं यो ब्रह्माणमिति ब्रुवन्।
पुष्पाञ्जलिं च विकिरन्नात्मानमपि चार्पयेत् ॥४२॥
असंख्या इति मन्त्रेणासंख्यनीराजनं दिशेत्।
वस्त्रप्रावरणं कुर्यात् सोऽब्रवीदिति मन्त्रत:।
अणोरणीयानिति च कुर्यात् स्वाङ्गे निवेशनम् ॥४३॥

"अघोरेभ्योऽथ"[३६] इस मन्त्र से आचारलिङ्ग आदि के द्वारा क्रम से चार प्रकार के नैवेद्य समर्पित करे॥३९॥ "ईशान"[३७] मन्त्र से महालिङ्ग के ऊपर भस्म छिड़ककर मूल मन्त्र से भी इसी प्रकार मन्त्रपुष्प समर्पित करे॥४०॥ "यतो वाचो निवर्तन्ते"[३८] मन्त्र को पढ़ते हुए आनन्द नामक नीराजन भी समर्पित करे॥४१॥ "स विश्व:" मन्त्र से ताम्बूल, "यो ब्रह्माणम्"[३९] मन्त्र से पुष्पाञ्जलि बिखेरते हुए स्वयं अपने को साधक शिव को समर्पित कर दे॥४२॥ "असङ्ख्या"[४०] मन्त्र से असंख्य नीराजन दिखाए। "सोऽब्रवीत्" मन्त्र से इष्टलिङ्ग को वस्त्र में लपेट कर "अणोरणीयान्" मन्त्र से उसे अपने अंग में बांध ले॥४३॥ हे देवि! मैंने इस प्रकार छोटी या लघ्वी

---

३६. अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्य:। सर्वेभ्य: शर्व सर्वेभ्यो नमो अस्तु रुद्ररूपेभ्य:॥

३७. दे. टिप्पणी सं. ११

३८. यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह। आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न बिभेति कुतश्चन॥ (ब्रह्मोपनिषद्, २२)

३९. यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै। (श्वेताश्वतर उप.६.१८)।

४०. असंख्याता सहस्राणि ये रुद्रा अधिभूम्याम्। तेषां सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि॥ (शु. य. १६.५४)।

इत्युक्तो हि मया देवि लघुराराधनाविधिः।
मत्सायुज्यप्रदो ह्येष यथोक्तमनुतिष्ठताम् ॥४४॥

इति श्रीकारणागमे उत्तरभागे पार्वतीपरमेश्वरसंवादे क्रियापादे पूजाविधिकथनं नाम षष्ठः पटलः ॥६॥

अर्चा की विधि बतलाई। जैसा बतलाया गया तदनुसार आचरण करने वालों को यह शिवसायुज्य प्रदान करती है। ॥४४॥

श्रीकारणागम के उत्तरभाग में श्रीपार्वतीपरमेश्वरसंवादरूपक्रियापादान्तर्गत पूजाविधिकथन नामक षष्ठ पटल समाप्त हुआ ॥६॥



सप्तमः पटलः

देव्युवाच

देवदेव महादेव लोकानुग्रहतत्पर।
त्वत्पूजाकर्णनादस्मि कृतार्था जगदीश्वर॥१॥
महापूजां च शुश्रूषुरस्मि लोकैककारण।
तद्विधानं च सम्बोध्य कृपयाऽनुगृहाण माम्॥२॥

महादेव उवाच

महापूजाक्रमः

अथ वक्ष्ये महादेवि महापूजाविधिक्रमम्।
स्नातः शुचिर्यतमना धृतधौताम्बरद्वयः॥३॥
धृतत्रिपुण्ड्रो रुद्राक्षमालालङ्कृतविग्रहः।
कृतसन्ध्यादिकः सम्पादितपुष्पादिसाधनः॥४॥
भद्रादिमण्डलन्यस्तपूजापात्रः सुखासनः।
चतुष्टयं दीपिकानां प्रज्वाल्य द्वयमेव वा॥५॥
गणान् संकीर्त्य चाचम्य प्राणानायम्य सक्रमम्।
देशकालौ सुसंकीर्त्य चेष्टलिङ्गस्य प्रीतये॥६॥

देवी ने कहा—

हे देवाधिदेव महादेव! हे लोगों पर अनुग्रह करने में तत्पर! शिव-पूजा का विधान सुनने से हे जगदीश्वर! मैं कृतार्थ हुई॥१॥ हे लोकों के एक मात्र कारण! मैं महती पूजा के बारे में सुनना चाहती हूँ। कृपया उसका विधान बतलाकर मुझ पर अनुग्रह करें॥२॥

महादेव ने कहा—

हे महादेवि! मैं महापूजा की विधि बतलाता हूँ। स्नान के बाद पवित्र होकर संयत मन से अधरीय और उत्तरीय इन दो वस्त्रों को धारण करे॥३॥ त्रिपुण्ड्र धारण करके शरीर को रुद्राक्ष की माला से अलंकृत करके सन्ध्यादि के बाद पुष्प आदि साधन जुटा ले॥४॥ भद्र आदि मण्डलों में पूजापात्रों को रखकर, सुखासन से बैठकर चार या दो दीप जलाए॥५॥ क्रमशः गणों का नाम लेकर, आचमन और प्राणायाम करके इष्टलिङ्ग की प्रीति के निमित्त देश - काल का कथन करे॥६॥ रंगोली में सामान्य

रङ्गवल्यां तु सामान्यमर्घ्यपात्रं निवेश्य च।
भस्मचन्दनपुष्पाणि तत्र निक्षिप्य निर्मलम्॥ ७॥
जलमापूर्य वै बिन्दुस्रवत्पीयूषधारया।
पूरितं भावयन्नेव पञ्चब्रह्मषडङ्गकैः।
मन्त्रैः सम्मन्त्र्य संस्कारैः संस्कुर्याद्वक्ष्यमाणकैः॥ ८॥
निरीक्षणं प्रोक्षणं च ताडनं चावगुण्ठनम्।
अभ्युक्षणमिति ख्याता वस्तुसंस्कारकारकाः।
धेन्वाख्ययाऽमृतीकृत्य पद्मलिङ्गे प्रदर्शयेत्॥ ९॥
ततः पाद्यार्घ्याचमनपात्राण्यपि च पङ्क्तिशः।
तदुत्तरेण विन्यस्येत् पाद्यपात्रे यथाक्रमम्॥१०॥
सिद्धार्थान् कुङ्कुमं दूर्वां कुष्ठं कर्पूरमेव च।
भस्मचन्दनपुष्पाणि निक्षिपेत् साधकोत्तमः॥११॥
षडङ्गैर्जलमापूर्य सद्याद्यैरभिमन्त्र्य च।
तदुत्तरेऽप्यर्घ्यपात्रे कुशादीन् विक्षिपेत् तथा॥१२॥

अर्घ्यपात्र रखकर उसमें भस्म, चन्दन और पुष्प डालकर निर्मल॥७॥ जल से भरते हुए हुए भावना करे कि बूंद-बूंद टपकते अमृत की धारा से वह पात्र भरा हुआ है। षडंग एवं पञ्चब्रह्म[1] मन्त्रों से अभिमन्त्रित करके आगे बतलाए गए संस्कारों से उसे संस्कृत करे॥८॥ निरीक्षण, प्रोक्षण, ताडन, अवगुण्ठन और अभ्युक्षण ये वस्तु का संस्कार करने वाले बतलाए गये हैं। धेनुमुद्रा[2] से इसे अमृत समान करके पद्म लिङ्ग को दिखलाए॥९॥ इसके बाद पाद्य, अर्घ्य और आचमनीय पात्रों को एक के बाद एक करके एक पंक्ति में रखकर क्रमशः पाद्यपात्र में॥१०॥ उत्तम साधक सिद्धार्थ[3] ,केशर, दूर्वा, कुष्ठ, कर्पूर, भस्म, चन्दन और पुष्प डाले॥११॥ षडङ्ग मन्त्रों से उनमें जल भरकर, "सद्योजात"[4] आदि से अभिमन्त्रित करके उसके बाद रखे अर्घ्यपात्र में भी कुशा आदि डाले॥१२॥ अर्घ्यपात्र के मध्य तक जल भरकर मूल

---

१. षडङ्ग एवं पञ्चब्रह्म मन्त्रों से तात्पर्य छः अंग मन्त्रों और ईशानादि पाँच मन्त्रों से है। पहले षडङ्गन्यास आदि करे। षडङ्गन्यास के लिए दे. वीरशैवाचारप्रदीपिका, पृ० ४२ से।

२. धेनुमुद्रा दोनों हाथों की चार चार ऊंगलियों को गाय के थन के आकार में बनाना।

३. सिद्धार्थ = सरसों।

४. सद्योजात मन्त्र, दे. तृतीय पटल, टि. ६

हृदयेन जलं क्षिप्त्वा मूलेनैवाभिमन्त्र्य च।
तदुत्तरे त्वाचमनपात्रे भस्मादि निक्षिपेत्।
षडङ्गैर्जलमापूर्य सद्याद्यैरभिमन्त्रयेत्॥१३॥
त्यागज्ञानानन्दपात्राण्यपि तत्पूर्वतो न्यसेत्।
भस्मचन्दनपुष्पाणि त्यागपात्रे निधाय च।
उष्णं वै जलमापूर्य प्रासादेनाभिमन्त्रयेत्॥१४॥
तदुत्तरे ज्ञानपात्रे भस्मादीनि निधाय वै।
चन्दनोदकमापूर्य चाघोरेणाभिमन्त्रयेत्॥१५॥
तदुत्तरानन्दपात्रे भस्मादीनि निधाय च।
शीतलोदकमापूर्य वामदेवेन मन्त्रयेत्॥१६॥
तत्पूर्वे स्नानपादप्रसादवारिगृहीतये।
विन्यसेत्तत्र चाधारपात्राणि त्रीणि पङ्क्तिशः॥१७॥
सामान्यस्यार्घ्यपात्रस्य शिवकुम्भं पुरो न्यसेत्।
तत्र भस्मादि निक्षिप्य तदा पानीयकं जलम्॥१८॥

मन्त्र से अभिमन्त्रित करने के बाद उसके पीछे रखे आचमन पात्र में भस्म आदि डाले। षडङ्ग "सद्योजात" आदि से उसे अभिमन्त्रित करे॥१३॥ त्याग, ज्ञान और आनन्द पात्रों को भी एक के बाद एक करके रखे। त्यागपात्र में भस्म, चन्दन और पुष्प डालकर गरम जल से भरे और "प्रासाद"[५] मन्त्र से अभिमन्त्रित करे॥१४॥ इसके बाद रखे ज्ञानपात्र में भस्म आदि डालकर चन्दन मिश्रित जल से उसे भरकर "अघोर"[६] मन्त्र से अभिमन्त्रित करे॥१५॥ उसके बाद रखे आनन्दपात्र में भस्म आदि डालकर ठंढे जल से भरकर "वामदेव"[७] मन्त्र से अभिमन्त्रित करे॥१६॥ उन पात्रों के पूर्व में स्नान के पादोदकरूपी प्रसाद जल को इकट्ठा करने के लिए तीन आधारपात्रों को एक पंक्ति में रखे॥१७॥ शिवकुम्भ को सामान्य अर्घ्यपात्र के सामने रखे। उसमें भस्म आदि डालकर फिर पीने योग्य जल डाले॥१८॥ "आ कलशेषु"[८] इस मन्त्र से शिवकुम्भ को मध्य तक जल से भरकर "आपो वा इदं

---

५. प्रासाद मन्त्र— हां, हीं, हूं, हैं, हौं। नमः शिवाय के पाँच अक्षरों से संयुक्त यही भव्य प्रसाद पंचाक्षरी कहलाता है।

६. अघोर मन्त्र, दे. तृतीय पटल, टि.८

७. वामदेव मन्त्र, दे. तृतीय पटल, टि.७

८. आ कलशेषु मन्त्र, दे. वीरशैवाचारलिङ्गिब्राह्मणदशकर्म पद्धति, पृ० ८९

हृदयेनैव संपूर्या कलशेष्विति मन्त्रतः।
आपो वा इदं सर्वमित्यनेनाभिमन्त्र्य च ॥१९॥
पूजाद्रव्याणि सम्प्रोक्ष्य तस्मादुद्धृतवारिणा।
सामान्यार्घ्यादिपात्राणि मूलेनाभ्यर्च्य वै ततः।
सामान्यार्घ्यगतं तोयं पाद्यादित्रिषु निक्षिपेत् ॥२०॥
गुरुमभ्यर्च्य नियतं यस्य देवेति मन्त्रतः।
तीर्थप्रसादौ गृह्णीयान्मत्पूजायोग्यताप्तये ॥२१॥
इति भक्तस्थलं प्रोक्तमथ माहेश्वरस्थले।
अयं मे हस्त इति तु हस्तशुद्धिं विधाय वै ॥२२॥

माहेश्वरस्थलपूजाविधानम्

सर्वभूतस्थमिति च कृत्वा भस्मासनं करे।
वेदाहमेतमिति च लिङ्गमादाय तद्गृहात्।
सर्वलिङ्गं स्थापयतीति लिङ्गं निक्षिपेत् करे ॥२३॥

सर्वम्" इस मन्त्र से अभिमन्त्रित करके ॥१९॥ उससे निकाले जल से पूजा के द्रव्यों पर तथा सामान्य अर्घ्य आदि पात्रों पर छिड़कने के बाद मूल मन्त्र से पूजन करके सामान्य अर्घ्यपात्र में रखे जल को पाद्य, अर्घ्य और आचमनीय इन तीनों पात्रों में डाल दे ॥२०॥ "यस्य देवे"[९] इस मन्त्र से विधिपूर्वक गुरु की पूजा करके शिव-पूजन की योग्यता प्राप्त करने के लिए तीर्थप्रसाद भी ग्रहण करे ॥२१॥ इस प्रकार भक्त में करणीय कर्मों का वर्णन किया गया। अब शिव के प्रति करणीय कर्मों में प्रथम "अयं मे हस्तः"[१०] इस मन्त्र से हस्त शुद्धि करके ॥२२॥

"सर्वभूतस्थम्" इस मन्त्र से हथेली पर भस्म का आसन बनाकर "वेदाहमेतम्"[११] मन्त्र से इष्टलिङ्ग को उसके रखने के स्थान से निकालकर "सर्वलिङ्गं स्थापयति"[१२] इस मन्त्र से हथेली पर रख ले ॥२३॥ अनन्तर "रुद्र यत्ते दक्षिणम्"[१३] इस मन्त्र

---

९. यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ (श्वेताश्वतर उपनिषद्, ३.६३)।

१०. अयं मे हस्तो भगवान् अयं मे भगवत्तरः। अयं मे विश्वभेषजोऽयं शिवाभिमर्शनः॥ अयं माता अयं पिता अयं जीवातुरागमत्। इदं तव प्रसर्पणं सुबन्धवेहि निरीहि॥ (ऋग्वेद,)

११. वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्। तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय॥ (शु.य. ३१.१८)

१२. सर्वलिङ्गं स्थापयति। लिङ्गोपनिषद्।

१३. रुद्र यत्ते दक्षिणं मुखं तेन मां पाहि नित्यम्। (श्वे. उ., ४.२१)

रुद्र यत्ते दक्षिणं मुखमित्यावाहयेत् तदा।
गुरुं ध्यात्वा षडङ्गं च न्यासं सम्यग्विधाय च।
सहस्रं षट्छतं वाऽपि जपेदेव षडक्षरीम्॥२४॥
प्रसादिसंज्ञके पश्चात् स्थले लिङ्गे च भस्म वै।
अभ्युक्ष्य नानुध्यायेच्च तमेवैकमिति स्मरन्॥२५॥
दशावधानविधिना निरीक्ष्य स्वेष्टलिङ्गकम्।
नीराजनं सानुरागं या ते रुद्रेति निर्दिशेत्॥२६॥
प्राणलिङ्गस्थले भस्म लिङ्गोपरि निधाय च।
मूलेनैव हि लिङ्गाग्रे पुष्पं निक्षिप्य मन्त्रितम्।
नीराजनं दर्शनाख्यमसौ य इति दर्शयेत्॥२७॥
पाद्यार्घ्याचमनं दद्यात् तत्तत्पात्रोदकेन हि।
त्यागपात्रस्थितेनैव लिङ्गं संस्नाप्य वारिणा॥२८॥
आधारपात्रेणाऽऽदाय सम्प्रोक्ष्य निजमूर्धनि।
आवहन्तीति मन्त्रेण वस्त्रेणोद्वर्त्य सादरम्॥२९॥

से आवाहन करे। गुरु का ध्यान करके षडङ्गन्यास[१४] को अच्छी प्रकार करके एक हजार या छः सौ बार षडक्षर मन्त्र का जप करे॥२४॥ प्रसादि नामक स्थल[१५] में इष्टलिङ्ग पर भस्म छिड़क कर उस एक शिव का ध्यान करे, कुछ और न सोचे॥२५॥ दशावधान विधि से अपने इष्टलिङ्ग को देखकर प्रेमपूर्वक "या ते रुद्र" इस मन्त्र से नीराजन करे॥२६॥ प्राणलिङ्ग स्थल में इष्टलिङ्ग के ऊपर भस्म रखकर, मूल मन्त्र से ही इष्टलिङ्ग के आगे पुष्प रखकर "असौ यः" इस मन्त्र से मन्त्रित दर्शन नामक नीराजन दिखाए॥२७॥ उन उन पात्रों के जल से पाद्य, अर्घ्य और आचमन प्रदान करे। त्यागपात्र में रखे जल से ही इष्टलिङ्ग को स्नान कराकर॥२८॥ जल को आधारपात्र में रखकर अपने सिरपर छिड़कने के बाद "आवहन्ति" इस मन्त्र से आदरपूर्वक इष्टलिङ्ग को पोंछकर॥२९॥ हथेली के ऊपर बनाए भस्म के

---

१४. षडङ्गन्यास, दे. टिप्पणी सं.१।
१५. प्रसादि स्थल = इष्टलिङ्ग में निष्ठा के कारण पापों का नाश हो जाने से चित्त की प्रसन्न स्थिति। (दे. सि. शि., ११.२)

भस्मासने निधायैव पादौ लिङ्गस्य भावयन्।
प्रणम्याभ्यर्च्य पाद्यं च ज्ञानपात्रजलेन. वै॥३०॥
दत्त्वैतज्जलमाधारपात्रेणादाय सन्नमन्।
कद्रुद्रायेति संमन्त्र्य पिबेदृतमितीरयन्॥३१॥
लिङ्गमूलेन गन्धाद्यैरलङ्कृत्य ततः परम्।
यो वै रुद्रः स भगवान् यश्चाग्निरिति मन्त्रतः।
नीराजनं त्ववसराभिख्यं दत्त्वा फलादिकम्॥३२॥
समर्प्यानन्दपात्रोदं गृह्णन्नाधारपात्रतः।
समर्प्य प्राश्य तत्पात्रं निक्षिपेदप्यधोमुखम्॥३३॥
अथाचमनपात्रस्थतोयेनाचमनीयकम्।
दत्त्वा तत्सवितुरिति त्यागपात्रस्थवारिणा॥३४॥
नमकाद्यै रुद्रसूक्तैरभिषिच्याथ तज्जलम्।
नमः शम्भव इत्यात्ममूर्धनि प्रोक्षयेत् तथा॥३५॥

आसन पर रखे और इष्टलिङ्ग के पादों की भावना करते हुए प्रणाम करे एवं ज्ञानपात्र स्थित जल से पाद्य॥३०॥ देकर उस पाद्य के जल को आधार पात्र में लेकर नमन करता हुआ साधक "कद्रुद्राय" मन्त्र से अभिमन्त्रित करके "ऋतम्" मन्त्र पढ़ते हुए उस जल को पी ले॥३१॥ गन्धादि के द्वारा मूल मन्त्र से इष्टलिङ्ग का अलङ्कार करने के बाद "यो वै रुद्रः स भगवान् यश्चाग्निः" इस मन्त्र से अवसर नामक नीराजन करके फलादि समर्पित करे॥३२॥ आनन्द नामक पात्र के जल को समर्पित करके इकट्ठा करके आधारपात्र में रखकर उसी से निकाल कर पी ले और उस पात्र को उलटकर रख दे॥३३॥ आचमन पात्र में रखे जल से आचमनीय समर्पित करके "तत्सवितुः"[१६] मन्त्र को पढ़ते हुए त्यागपात्र में रखे जल का ॥३४॥ नमकादि[१७] रुद्रसूक्तों से इष्टलिङ्ग का अभिषेक करके "नमः शम्भवाय"[१८] मन्त्र से अपने सिर पर उस जल को छिड़के॥३५॥ "आवहन्ति" मन्त्र से वस्त्र में इष्टलिङ्ग को लपेटकर

---

१६. तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्॥ (शु.य., २२.९)
१७. नमकादि रुद्रसूक्त—शुक्लयजुर्वेद संहिता का १६वाँ अध्याय।
१८. शु. य., १६.४१

आवहन्तीति वस्त्रेण समुद्वर्त्येष्टलिङ्गकम्।
भस्मासने निधायास्य गृह्णीयात् पादतीर्थकम् ॥३६॥
ततो विधूममङ्गारमानीयानेन तापयेत्।
यो वै रुद्रः स भगवान् यश्चाग्निरिति मन्त्रतः ॥३७॥
यो वै रुद्रः स भगवान् यच्च व्योमेति मन्त्रतः।
दशाङ्गमहितं मह्यं धूपं दद्यान्मनोहरम् ॥३८॥
उद्दीप्यस्वेति च ततो माङ्गल्याख्यं च दर्शयेत्।
यस्तन्तुनाभ इति च वस्त्रयुग्मं प्रदाय च।
अग्निरित्यादिभिर्मन्त्रैर्लिम्पेद् भस्म सहोदकम् ॥३९॥
नमो हरिकेशायेति प्रदद्याद् यज्ञसूत्रकम्।
गन्धद्वारामिति पठन् दद्याद् गन्धं सहाक्षतम् ॥४०॥
उमासहायमिति च कुर्याद् गन्धानुलेपनम्।
आकाशादिति वै दद्यादक्षतारोपणं बुधः ॥४१॥

भस्मासन रखने के बाद उसके पादोदक का ग्रहण करे ॥३६॥ फिर "यो वै रुद्रः स भगवान् यश्चाग्निः" इस मन्त्र से धूमरहित अग्नि लाकर उससे इष्टलिङ्ग को तपाए ॥३७॥ "यो वै रुद्रः स भगवान् यच्च व्योम" इस मन्त्र से शिव को मनोहर दशांग धूप प्रदान करे ॥३८॥ "उद्दीप्यस्व" इस मन्त्र से माङ्गल्यनामक नीराजन दे। "यस्तन्तुनाभ" मन्त्र से वस्त्र का जोडा समर्पित करने के बाद "अग्निः" इत्यादि मन्त्रों से पानी में मिलाकर भस्म का लेपन करे ॥३९॥ "नमो हरिकेशाय" मन्त्र से यज्ञोपवीत चढ़ा कर "गन्धद्वाराम्"[१९] मन्त्र का पठन करते हुए अक्षत के साथ गन्ध समर्पित करे ॥४०॥ "उमासहायम्"[२०] इस मन्त्र से गन्ध का लेपन करे। "आकाशात्" मन्त्र से अक्षत भलीभाँति चढ़ाए ॥४१॥ "अपाणिपादः"[२१] मन्त्र से तथा हे महेश्वरि "हिरण्यपात्रम्"

---

१९. गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम्। ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियम्॥

२०. उमासहायम्।

२१. अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः।
वेद्यं च सर्वं न च तस्यास्ति वेत्ता तमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तम्॥

अपाणिपाद इति हिरण्यपात्रमिति ब्रुवन्।
नीराजनं दर्शयेच्च कर्पूराख्यं महेश्वरि ॥४२॥
तदेवर्तमिति पठन् पुष्पमाल्यानि चार्पयेत्।
नमो हिरण्यबाहवे मकुटादि विभूषयेत् ॥४३॥
या ते रुद्र शिवा तनूः शिवा विश्वाहभेषजी।
इति नीराजनं दद्याच्छृङ्गाराख्यं महेश्वरि ॥४४॥
निधनपतये इति वेदसारसहस्रतः।
मूलेनापि च पुष्पाणि पत्राणि च समर्पयेत् ॥४५॥
वादित्य इति विल्वानि यो वै रुद्रेति भस्म च।
नम ईंध्रियाय चेति श्वेतच्छत्रं समर्पयेत् ॥४६॥
नमो वात्याय च पठन् चामरं च समर्पयेत्।
चन्द्रमा मनस इति तालवृन्तेन वीजयेत् ॥४७॥
स यश्चायं पुरुष इति दर्पणमर्पयेत्।
यो वेदादाविति पठन् घण्टानादं समर्पयेत् ॥४८॥
अध्यवोचदिति पठन् शङ्खस्वनमथार्पयेत्।
शिवेन वचसा त्वेति गीतमाश्रावयेत् तथा ॥४९॥

कहते हुए कर्पूरनामक नीराजन दिखाए ॥४२॥ "तदेवर्तम्" मन्त्र का पाठ करते हुए फूल की मालाएं चढ़ाए। "नमो हिरण्यबाहवे"[22] मन्त्र से मकुटादि से विभूषित करे ॥४३॥ "या ते रुद्र शिवा तनूः शिवा विश्वाहभेषजी" इस मन्त्र से हे महेश्वरि! शृंगारनामक नीराजन प्रदान करे ॥४४॥ "निधनपतये" वेदसारसहस्रतः और मूल मन्त्र से भी पुष्प और पत्र समर्पित करे ॥४५॥ "वादित्य" मन्त्र से विल्व, "यो वै रुद्रः" मन्त्र से भस्म, "नम ईंध्रियाय" मन्त्र से श्वेत छत्र चढाए ॥४६॥ "नमो वात्याय" मन्त्र पढ़ते हुए चामर हिलाए, "चन्द्रमा मनसः" मन्त्र से ताड़ का पंखा झले ॥४७॥ "स चायं पुरुषः" मन्त्र से दर्पण दिखाए, "यो वेदादौ" पढ़ते हुए घंटा बजाए ॥४८॥ "अध्यवोचत्" मन्त्र पढ़ता हुआ शंख का वादन करे। "शिवेन वचसा त्वा" मन्त्र पढ़कर गीत गाकर सुनाए ॥४९॥ "असौ योऽवसर्पति" मन्त्र पढ़ता हुआ

---

२२. शु० य०, १६.१७

असौ योऽवसर्पतीति पठन् नृत्तं प्रदर्शयेत्।
उद्यन्तमस्तं यन्तमिति सव्यहस्तेन कल्पयेत्।
प्रदक्षिणानि प्रयतो मम लिङ्गस्य सर्वतः ।।५०।।
नमोऽस्तु नीलग्रीवायेत्यामनन् वै नमांस्यपि।
नमो वृद्धाय च पठन् स्तोत्रं कुर्यादनन्यधीः ।।५१।।
दैवीयो मानुषो गन्ध इति धूपं समर्पयेत्।
न तत्र सूर्यो भातीति महानीराजनं तथा ।।५२।।
ईरां वहत इत्येवं ज्वालयेत् करदीपिकाः।
ज्योतिष्मतीमिति पठन् ज्योतींषि ज्वालयेदपि ।।५३।।
कृतानि शालिपिष्टेन डमरुप्रतिरूपतः।
ज्योतींषि तानि कथ्यन्ते मम प्रीतिकराण्यपि ।।५४।।
या ते रुद्र इति पठन् याचयेन्मामनन्यधीः।
अजात इत्येवमिति विज्ञापनमथाचरेत्।
वेदान्तविज्ञान इति पूजापुष्पादिकं त्यजेत् ।।५५।।

"असौ योऽवसर्पति" मन्त्र पढ़ता हुआ नृत्त प्रदर्शित करे। शिवलिङ्ग के चारो ओर दाहिने हाथ से "उद्यन्तमस्तं यन्तम्" पढ़ते हुए पवित्र साधक प्रदक्षिणा करे।।५०।। "नमोऽस्तु नीलग्रीवाय"[२३] मन्त्र पढ़ते हुए नमस्कार करे और "नमो वृद्धाय"[२४] मन्त्र का पाठ करते हुए एकाग्र चित्त से स्तुति करे।।५१।। "दैवी यो मानुषो गन्धः"[२५] मन्त्र से धूप समर्पित करे। "न तत्र सूर्यो भाति"[२६] मन्त्र से महानीराजन प्रदर्शित करे।।५२।। "ईरां वहत" मन्त्र से हाथ में दीप लेकर जलाए। "ज्योतिष्मतीम्" मन्त्र पढ़ते हुए ज्योतियों को भी जलाए।।५३।। चावल के चूर्ण से डमरु के आकार के बनाए गए दीप 'ज्योति' कहलाते हैं, जो मुझे प्रसन्न करते हैं।।५४।। "या ते रुद्र" मन्त्र पढ़ते हुए अनन्य चित्त होकर शिव से याचना करे। "अजातः" मन्त्र से विज्ञापन करे और "वेदान्तविज्ञान"[२७] मन्त्र से पुष्पाञ्जलि दे।।५५।। निवेदन के समय इष्टलिङ्ग

---

२३. शु. य., १६.८
२४. शु.य., १६.३०
२५. दैवीयो मानुषो गन्धः।
२६. न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकम्। कठोपनिषद्, ५.१५
२७. वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः।

निवेदनार्हवेलायां पत्रपुष्पादिकं बहु।
स्थितं चेदिष्टलिङ्गाग्रे निपतेद् भोज्यवस्तुषु ।।५६।।
निर्माल्यसुमसंसर्गानर्हं तत् स्यान्निवेदनम्।
तदल्पशेषं विसृजेन्न लिङ्गं शून्यमस्तकम् ।।५७।।
शरणाख्यस्थले भोज्यपदार्थेष्वग्निरित्यतः।
विकीर्य सजलं भस्म सव्याहृतिकया तथा ।।५८।।
सावित्र्या रुद्रगायत्र्या परिषिच्यैवमम्बुभिः।
स्वाहां तेभ्यस्तथाचारलिङ्गादिभ्योऽर्पयेत् ततः ।
षड्लिङ्गार्पणसद्भावे विशेषोऽस्ति शृणु प्रिये ।।५९।।
भक्तस्थले क्रियाशक्तियुते वै नासिकाङ्गगे।
आचारलिङ्गसंज्ञेऽस्मिन् सद्योजातमुखात्मके।
गन्धप्रसादं सद्भक्त्या चित्तहस्तेन चार्पयेत् ।।६०।।
माहेश्वरस्थले ज्ञानशक्तिके रसनाङ्गगे।
गुरुलिङ्गाभिधे वामदेववक्त्रे विशेषतः।
बुद्धिहस्तेन तु रुचिं निष्ठाभक्त्या समर्पयेत् ।।६१।।

के सामने यदि बहुत सारे पत्र-पुष्प आदि भोज्य वस्तुओं में गिर जाएं।।५६।। तब निर्माल्य पुष्पों के संसर्ग से वे वस्तुएं निवेदन के योग्य नहीं रहतीं। उनको अलग हटाकर शेष को विसर्जित कर दे, पर इष्टलिङ्ग का मस्तक खाली न रखे।।५७।। शरणनामक[२८] स्थल में "अग्नि" मन्त्र से भोज्य पदार्थों पर जलसहित भस्म छिड़के तथा व्याहृति सहित।।५८।। गायत्री और रुद्रगायत्री[२९] मन्त्र पढ़ते हुए जल छिड़के। अन्त में स्वाहा बोले। बाद में आचारलिङ्ग[३०] आदि को वे पदार्थ अर्पित करे। छः लिङ्गों को अर्पण करने में जो विशेष बात है, हे प्रिये! उसे सुनो।।५९।। भक्तस्थल[३१] में भक्त की नासिका क्रियाशक्ति से युक्त होती है, उसका मुख सद्योजात है, उसे आचारलिङ्ग कहते हैं, उसके प्रति भक्तिपूर्वक चित्तरूपी हाथ से गन्ध का प्रसाद समर्पित करे।।६०।। माहेश्वरस्थल[३२] की जीभ में ज्ञानशक्ति रहती है, जिसका मुख

---

२८. शरणस्थल = ज्ञानरूप, अङ्गलिङ्ग के सामरस्य से युक्त शिव को पति मानने वाला शरणस्थल कहलाता है। (दे. सि. शि. १३.२)।

२९. वामदेवाय विद्महे तत्पुरुषाय धीमहि। तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्।।

३०. धर्माचार, भावाचार और ज्ञानाचार, दे. सि. शि. १५.५८-६४

३१. भक्तस्थल। दे. सि. शि. ५.२५

३२. दे. सि. शि. १०.२

स्थले प्रसादिसंज्ञेऽस्मिन्निच्छाशक्तिसमन्विते।
दृगङ्गकेऽघोरमुखे शिवलिङ्गाभिधे पुनः।
भक्त्याऽवधानया रूपमहङ्कारेण चार्पयेत्॥६२॥
प्राणलिङ्गिस्थले त्वादिशक्तियुक्ते त्वगङ्गके।
चरलिङ्गाऽभिधे तत्पूरुषवक्त्रे दृढव्रतः।
भक्त्याऽनुभवया मनोहस्तेन स्पर्शमर्पयेत्॥६३॥
शरणस्थले तु परया शक्त्या युक्ते श्रवोऽङ्गगे।
प्रसादलिङ्गे त्वीशानमुखे शब्दप्रसादकम्।
आनन्दभक्त्या सुज्ञानहस्तेनैव समर्पयेत्॥६४॥
ऐक्यस्थले तु चिच्छक्तियुते वै मानसाङ्गगे।
महालिङ्गे परशिवमुखे संकल्पमर्पयेत्।
सद्भावाभिख्यहस्तेन भक्त्या समरसाख्यया॥६५॥
एवमङ्गं च लिङ्गं च भक्तिं शक्तिं तथा स्थलम्।
मुखं हस्तं प्रसादं च ज्ञात्वा वै सम्यगर्चयेत्।
एवमर्पणसद्भावं सर्वदैव समभ्यसेत्॥६६॥

वामदेव रूप है, जिसे गुरुलिङ्ग कहते हैं। उसके प्रति बुद्धिरूपी हाथ से निष्ठाभक्ति से रुचि या स्वाद समर्पित करे॥६१॥ जिसे प्रसादिस्थल कहते हैं, वह इच्छा शक्ति से युक्त होता है, वह अघोर मुखवाला शिवलिङ्ग आँखों में रहता है। सावधान भक्ति पूर्वक उस शिवलिङ्ग को अहंकार रूपी हाथ के द्वारा रूप समर्पित करे॥६२॥ प्राणलिङ्ग[३३] स्थल में आदिशक्ति से युक्त त्वक् (चमडी) अङ्ग में चर नामक लिङ्ग रहता है, जिसका मुख तत्पुरुष रूप है। उसके प्रति दृढव्रत होकर अनुभव रूप भक्ति से युक्त होकर मन रूपी हाथ से स्पर्श का अर्पण करे॥६३॥ शरण स्थल[३४] में पराशक्ति से युक्त, कर्णों में रहने वाले प्रसादलिङ्ग का मुख ईशान है। उसके प्रति आनन्द भक्तिपूर्वक सुज्ञानरूपी हाथ से शब्द प्रसाद समर्पित करे॥६४॥ ऐक्य स्थल[३५] में मन में रहने वाला चित्त् शक्ति से युक्त महालिङ्ग है, जिसका मुख परशिव का है। उसके प्रति समरस नामक भक्ति से युक्त सद्भावरूपी हाथ से संकल्प समर्पित करे॥६५॥ इस प्रकार अङ्ग, लिङ्ग, भक्ति, शक्ति, स्थल, मुख, हाथ और प्रसाद को भली

---

३३. दे. सि. शि. १२.३
३४. दे. सि. शि. १३.२
३५. दे. सि. शि. १४.२

द्विविधं समर्पणम्

समर्पणं द्विधा प्रोक्तमर्चाङ्गं सार्वकालिकम्।
समर्पणे समर्चाङ्गे रुचिं भावेन नान्यथा।।६७।।
शरणाख्यस्थलेऽप्येवमर्पणं षट्स्थलात्मकम्।
ऐक्यस्थले तु मूलेन लिङ्गे पुष्पं निधाय च।।६८।।
धूपं समर्प्य चानन्दनीराजनमथार्पयेत्।
यतो वाचो निवर्तन्त इति मन्त्रं जपन् पुनः।।६९।।
स विश्वकृदिति पठन् ताम्बूलं च समर्पयेत्।
आरभ्येति च ताम्बूलनीराजनमथार्पयेत्।।७०।।
यो ब्रह्माणमितीशान इति मन्त्रद्वयेन च।
मन्त्रयन् पुष्पजातं वै मन्त्रपुष्पं समर्पयेत्।।७१।।
असंख्याताः सहस्राणीत्यादिमन्त्रं समुच्चरन्।
असंख्याताभिख्यनीराजनमप्यर्पयेत् ततः।।७२।।
सोऽब्रवीदिति मन्त्रेण वस्त्रेणावृत्य लिङ्गकम्।
अणोरणीयानिति तु पेटिकायां सुविन्यसेत्।।७३।।

को भली भांति जानकर सम्यक् रूप से पूजन करे। इस प्रकार के समर्पण की सद्भावना का सदा ही अभ्यास करे।।६६।।

समर्पण दो प्रकार का होता है— एक समर्पण पूजा का अङ्ग होता है और दूसरा समर्पण सदा बना रहता है। अर्चा के अङ्ग वाले समर्पण के प्रति रुचि भावना से उत्पन्न करनी होती है, भावना के बिना रुचि उत्पन्न नहीं होती।।६७।। इसी प्रकार शरण नामक स्थल में भी समर्पण षट्स्थलात्मक होता है। ऐक्य स्थल में मूल मन्त्र से इष्टलिङ्ग के ऊपर पुष्प रखकर।।६८।। धूप समर्पित करके फिर आनन्द नामक नीराजन दिखाए और "यतो वाचो निवर्तन्ते" मन्त्र का पाठ करता रहे।।६९।। "स विश्वकृत्" मन्त्र पढ़ते हुए ताम्बूल चढ़ाए और "आरभ्य" इस मन्त्र से ताम्बूल नामक नीराजन समर्पित करे।।७०।। "यो ब्रह्माणम्"[३६] तथा "ईशान" इन दो मन्त्रों का पाठ करते हुए मन्त्रपुष्पाञ्जलि के रूप से फूलों को समर्पित करे।।७१।। "असंख्याताः सहस्राणि" आदि मन्त्रों को बोलते हुए असंख्यात नामक नीराजन समर्पित करे।।७२।। "सोऽब्रवीत्" मन्त्र पढ़कर इष्टलिङ्ग को कपड़े में लपेट कर "अणोरणीयान्" मन्त्र

---

३६. यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै। (श्वे. उ. ६.१८)

एवं महार्चनं प्रोक्तं महादेवि महाफलम्।
विधिनाऽनेन संपूज्य न पुनर्जन्मभाग् भवेत्।
देवेशि गुरुपूजायां विशेषः कथ्यते शृणु ।।७४।।

गुरुपूजायां विशेषः

पद्यार्घ्याचमनाख्यानि त्यागज्ञानादिकानि च।
न विद्यन्तेऽत्र पात्राणि पात्रद्वितयमेव च ।।७५।।
शिवकुम्भं च सामान्यमर्घ्यपात्रं च विद्यते।
शिष्टं सर्वं समं प्रोक्तं किमतः श्रोतुमिच्छसि ।।७६।।

इति श्रीकारणागमे उत्तरभागे श्रीपार्वतीपरमेश्वरसंवादे क्रियापादे शिवपूजाविधानं नाम सप्तमः पटलः ।।७।।

उसे पेटी में संभाल कर रख दे।।७३।। हे महादेवि! इस प्रकार की महती पूजा महाफल देने वाली कही गई है। इस विधि से पूजन करने पर साधक को फिर से जन्म नहीं लेना पड़ता। हे महेशि! अब गुर्वी पूजा में जो विशेष बात बतलाता हूँ, उसे सुनो।।७४।।

इसमें पाद्य, अर्घ्य, आचमन पात्र तथा त्याग, ज्ञान आदि पात्र नहीं होते। दो ही पात्र होते हैं।।७५।। शिवकुम्भ तथा सामान्य अर्घ्यपात्र। बाकी सब पहली पूजा के समान कहा गया है। इसके बाद तुम क्या सुनना चाहती हो?।।७६।।

श्रीकारणागम के उत्तरभाग में श्रीपार्वतीपरमेश्वरसंवादरूपक्रियापादान्तर्गत शिवपूजाविधान नामक सप्तम पटल समाप्त हुआ।।७।।



अष्टमः पटलः

देव्युवाच

देवदेव जगन्नाथ सर्वानुग्रहतत्पर।
विधानमिदमुत्कृष्टं वेदमन्त्रसमन्वितम्॥१॥
वेदाधिकारिणां सम्यगनुष्ठेयं प्रकाशितम्।
स्त्रीमुख्याः केन विधिना कृतार्थाः स्युर्निबोध मे॥२॥

महादेव उवाच

महादेवि प्रवक्ष्यामि तान्त्रिकं पूजनक्रमम्।
अनुष्ठितेन येन स्युः सर्वे सर्वार्थभाजनाः॥३॥

तान्त्रिकपूजनक्रमः

विद्यासु श्रुतिरुत्कृष्टा रुद्रैकादशिनी श्रुतौ।
तत्र पञ्चाक्षरस्तत्र शिव इत्यक्षरद्वयम्॥४॥
तस्मादधिकृतां वेदे तत्राऽनधिकृतामपि।
मदीयमूलमन्त्रेण पूजनं सर्वतो वरम्॥५॥
अथवा तान्त्रिकैर्मन्त्रैरपि पूजा विशिष्यते।
एषु भात्युपचारार्थः स्पष्टः सर्वोऽपि भामिनि॥६॥

देवी ने कहा—

हे देवाधिदेव, जगन्नाथ, सब पर अनुग्रह करने में तत्पर! यह उत्कृष्ट विधान वेदमन्त्रों से समन्वित है॥१॥ इसका अनुष्ठान वेद के अधिकारियों द्वारा भलीभांति करना बतलाया गया। मुझे बतलाएँ कि स्त्री आदि किस विधि से अपने अभीष्ट का सम्पादन करें॥२॥

महादेवने कहा—

हे महादेवि! तान्त्रिक पूजा का क्रम बतलाता हूँ, जिसके अनुष्ठान से सभी सम्पूर्ण अर्थ प्राप्त होंगे॥३॥

विद्याओं में श्रुति उत्कृष्ट है, श्रुति में रुद्रैकादशिनी[१] ,उसमें पञ्चाक्षर और उसमें भी शिव ये दो अक्षर उत्कृष्ट हैं॥४॥ अतः वेदाध्ययन के अधिकारी और अनधिकारी को भी मूल पञ्चाक्षरी मन्त्र से पूजन करना उत्तम है॥५॥ अथवा तान्त्रिक मन्त्रों से भी पूजा करना विशिष्ट होता है। हे भामिनि! इसमें स्पष्ट रूप से पूजोपचार के

---

१. रुद्रैकादशिनी = शुक्ल यजुर्वेद संहिता का सोलहवाँ अध्याय रुद्रैकादशिनी कहा जाता है, क्योंकि तैत्तिरीय संहिता में यह अध्याय एकादश अनुवाकों में विभक्त है।

वैदिकेषु तु मन्त्रेषु लिङ्गादेवौपचारिकात्।
तेषु तेषूपचारेषु वेदमन्त्रा नियोजिता:।। ७।।
समनुष्ठीयमानोऽर्थो येषु स्पष्टं प्रकाशते।
तेष्वेव पठ्यमानेषु चित्तं कृत्येऽनुरज्यते।। ८।।
भक्तिलभ्योऽस्म्यहं यस्मादभक्त्या पूजनं वृथा।
तन्मन्त्रास्तान्त्रिका देवि पूजायामुत्तमोत्तमा:।। ९।।

तान्त्रिकपूजायां सर्वेषामधिकार:

सर्वेषामधिकारोऽस्ति तान्त्रिकेषु वरानने।
वैदिकानां तथान्येषां स्त्रीणां पुंसां च सुव्रते।।१०।।

शिवकुम्भपूजनम्

वैदिकोऽपि च संयुक्तैस्तान्त्रिकैरपि पूजयेत्।
ईशान इति मन्त्रेण शिवकुम्भं प्रपूजयेत्।।११।।
ईशान: कलशस्याग्रे पूर्वे तत्पुरुषस्तथा।
अघोरो दक्षिणे चैव सद्योजातस्तु पश्चिमे।।१२।।
उत्तरे वामदेवश्च मध्ये च परम: शिव:।
अधोभागे परा शक्तिर्विश्वोद्भासनकारिणी।।१३।।
सद्रूपं कलशाकारं चिद्रूपं कलशद्युति:।
मध्यस्थं जलमुत्कृष्टं सर्वतीर्थोत्तमोत्तमम्।।१४।।

सारे अर्थ प्रतिभासित होते हैं।।६।। वैदिक मन्त्रों के उपचार के रूप से ही उन उन कर्मों के विभिन्न वेद मन्त्र जोड़ दिए गए हैं।।७।। किए गए उपचारों का अर्थ जहाँ स्पष्ट प्रकट है, उन मन्त्रों के पढ़ने पर चित्त कर्म में अनुरक्त होता है।।८।। क्योंकि शिव भक्ति से प्राप्त होते हैं अत: बिना भक्ति के किया गया पूजन व्यर्थ है। हे देवि! अत: तान्त्रिक मन्त्र पूजा में परम उत्तम होते हैं।।९।।

हे वरानने, सुव्रते! वैदिकों तथा अन्य स्त्री-पुरुष आदि सबको तान्त्रिक मन्त्रों में अधिकार है।।१०।। वैदिक भी तान्त्रिक मन्त्रों को मिलाकर पूजा कर सकता है। "ईशान" मन्त्र से शिवकुम्भ का पूजन करे।।११।। कलश के अग्रभाग में ईशान, पूर्व में तत्पुरुष, दक्षिण में अघोर, पश्चिम में सद्योजात।।१२।। उत्तर में वामदेव, मध्य में पर शिव, नीचे के भाग में विश्व को प्रगट करने वाली पराशक्ति है।।१३।। कलश का आकार सत् स्वरूप है और कलश की द्युति चित् रूप है। कलश के बीच में रखा जल उत्कृष्ट तथा सारे तीर्थों के जल से भी अत्युत्कृष्ट है।।१४।।

चिदानन्दरसं साक्षाच्छिवरूपमिति स्मृतम्।
इति मन्त्रैश्च गन्धाद्यैः शिवकुम्भं प्रपूजयेत् ॥१५॥

इष्टलिङ्गपूजा

हृदयाद्रिगुहावास करुणावास शाश्वत।
पूजापरिग्रहायाद्य करपीठे निषीद मे॥
इति मन्त्रेणेष्टलिङ्गं विन्यसेत् करपङ्कजे ॥१६॥
पञ्चपञ्चात्मलीलाढ्य पञ्चकृत्यपरायण।
आवाहितः सुप्रसन्नः सान्निध्यं कुरु सर्वदा ॥१७॥
इत्यावाह्य गुरून्नत्वा नुत्वा संपूज्य च क्रमात्।
ध्यात्वा मां वै सुप्रसन्नं मूलमन्त्रं जपेदपि॥
दशावधानविधिना चिरं लिङ्गं समीक्ष्य च ॥१८॥
सर्वमङ्गलयाऽऽश्लिष्टशुभाङ्ग हृदयङ्गम।
नीराजनं गृहाणेश सानुरागं सदाशिव ॥१९॥
नीराजनं सानुरागमिति मन्त्रेण दर्शयेत्।
ततश्च मूलमन्त्रेण भस्म पुष्पं निधाय च ॥२०॥

यह कलश - जल साक्षात् शिवरूप चिदानन्द-रस रूप है। इन मन्त्रों द्वारा गन्धादि से शिवकुम्भ की पूजा करे ॥१५॥

"हे हृदय रूपी पर्वत की गुहा में रहनेवाले करुणा के घर, शाश्वत शिव! पूजा ग्रहण करने के लिए मेरी हथेली पर विराजें।" इस मन्त्र से इष्टलिङ्ग को हाथ रूपी कमल पर रखे ॥१६॥ "हे पाँच पञ्चात्मक लीला[२] के धनी पञ्च कृत्यों[३] में लगे हुए शिव! आवाहित होकर प्रसन्न हों और सर्वदा भक्त का सान्निध्य करें" ॥१७॥ इस मन्त्र से आवाहन करके, गुरुओं को नमस्कार करके, क्रमशः पूजा करके शिव का ध्यान करते हुए सुप्रसन्न मन से मूल मन्त्र का जप भी करे। दशावधान विधि से देर तक इष्टलिङ्ग को देखकर ॥१८॥ "हे सर्वमङ्गला से आलिङ्गित, शुभ अङ्गों वाले, हृदय में निवास करने वाले सदाशिव, ईश! अनुरागपूर्वक दिखाए गए नीराजन को स्वीकार करें" ॥१९॥ इस मन्त्र से अनुरागपूर्वक नीराजन प्रदर्शित करे। बाद में मूल मन्त्र से भस्म और पुष्प को रखकर ॥२०॥ "अन्तस् में स्थित

---

२. पञ्चपञ्चात्मक लीला का अभिप्राय शिव की २५ लीलाओं से है।

३. दे. पञ्चम पटल, टिप्पणी सं. १

अन्तस्थित बहिर्व्याप्त ज्योतिर्लिङ्गस्वरूपक।
नीराजनं गृहाणेश दर्शनाख्यं सदाशिव॥
इति दर्शननीराजनं दत्वा पाद्यमर्पयेत्॥२१॥
हरिमुख्यामरशिरोरत्ननीराजिताङ्घ्रिक।
भवत्पादाब्जयोः पाद्यं गृहाण परमेश्वर॥
इति पाद्यं समर्प्यैव हस्तयोरर्घ्यमर्पयेत्॥२२॥
वराभयाङ्कितकरकञ्जपालितकिङ्कर।
हस्तनीरेजयोरर्घ्यं गृहाण गिरिजावर॥
इति चार्घ्यं समर्प्याथाचमनीयं मुखेऽर्पयेत्॥२३॥
जगदाभीलकाकोलगोलपालिलसद्गल।
श्रीमन्मुखाम्बुजे दत्तं गृहाणाचमनीयकम्॥
दत्त्वाऽऽचमनमित्येवं स्नापयेदिष्टलिङ्गकम्॥२४॥
गङ्गातरङ्गसङ्गाश्रितोत्तमाङ्ग नमोऽस्तु ते।
शुद्धोदकस्नानमिदं गृहाण परमेश्वर॥२५॥

और बाहर में व्याप्त ज्योतिर्लिङ्गस्वरूप ईश सदाशिव! दर्शन नामक नीराजन स्वीकार करें।'' इस मन्त्र से दर्शन नामक नीराजन देकर पाद्य समर्पित करे॥२१॥ ''हरि प्रमुख देवों के सिर पर लगे रत्नों से नीराजित चरणों वाले, आपके दोनों चरणकमलों में दिए गए पाद्य का हे गिरिजापते! ग्रहण करें।'' इस मन्त्र से पाद्य समर्पित करके हाथों में अर्घ्य समर्पित करे॥२२॥ ''वर और अभय मुद्राओं[४] से युक्त हस्त-कमल से किङ्करों का पालन करने वाले हे गिरिजापते! हस्तकमलों में अर्घ्य का ग्रहण करें।'' इस मन्त्र से अर्घ्य समर्पित करके मुख में आचमनीय अर्पित करे॥२३॥ ''हे जगत् रूपी आभील[५] काकोलगोलपालि से शोभित गले वाले! श्री युक्त मुख कमल में प्रदान किए गए आचमनीय को ग्रहण करें।'' इस मन्त्र से आचमनीय प्रदान करके इष्टलिङ्ग को स्नान कराए॥२४॥ ''गङ्गा की तरङ्गों के सम्पर्क से कान्तिमान् सिरवाले! तुमको नमस्कार है। हे परमेश्वर! इस शुद्धोदक से कराए गए स्नान को स्वीकार करें''॥२५॥ इस मन्त्र से स्नान कराकर तीर्थ जल को सिरपर छिड़के।

---

४. वरमुद्रा हाथ की हथेली को थोड़ा दान के रूप में नीचे की ओर झुकाना तथा अभय मुद्रा हथेली को उपर उठाकर दिखाना।

५. आभील = कष्टकारक, काकोल = कालकूट विष, इसको मुख में रोकने से गोल गाल हो जाने से गले की शोभा वाले शिव। दे. अमरकोश

इति संस्नाप्य च ततस्तीर्थं मूर्धनि निक्षिपेत्।
पादोदकं गृहीत्वा च नमस्कुर्यादनन्तरम्॥२६॥
सर्वमङ्गलमाङ्गल्यं सर्वपावनपावनम्।
सर्वसिद्धिकरं पुंसां शम्भोः पादाम्बुसेवनम्॥
इति प्राश्य ततो लिङ्गं गन्धाद्यैरभिपूजयेत्॥२७॥
चिद्रूप जगदाधार स्थूलसूक्ष्म परात्पर।
नीराजनं गृहाणेशावसराख्यं सदाशिव॥२८॥
इत्यवसराख्यनीराजनं दत्वा फलादिकम्।
समर्प्य चेष्टलिङ्गाग्रे भस्माभ्युक्ष्य सुमादिकम्॥
दत्त्वा मज्जननीराजनं पश्चादभिदर्शयेत्॥२९॥
परिपूर्णचिदानन्द जलाध्यक्ष सदाशिव।
नीराजनं गृहाणेश मज्जनाख्यं सुशोभनम्॥३०॥
इति दत्त्वा पुनः पाद्यमर्घ्यमाचमनीयकम्।
पूर्वमन्त्रैः प्रदायाथ स्नानं च परिकल्पयेत्॥३१॥
पञ्चब्रह्ममयतनो पञ्चकृत्यपरायण।
पञ्चामृतस्नानमिदं गृह्यतां भक्तवत्सल॥३२॥

चरणजल का ग्रहण करके बाद में नमस्कार करे॥२६॥ ''शम्भु के चरण-जल का सेवन सारे मङ्गलों को भी मङ्गल देनेवाला, सारे पापों को भी पावन करनेवाला और लोगों को सारी सिद्धियां देनेवाला है।'' इस मन्त्र से जल का प्राशन करके इष्टलिङ्ग की गन्धादि से पूजा करे॥२७॥ ''हे चित् स्वरूप जगत् के आधार, हे स्थूल और सूक्ष्म रूप, पर से पर, ईश, सदाशिव! अवसर नामक नीराजन को स्वीकार करें''॥२८॥ इस मन्त्र से अवसर नामक नीराजन को दिखला कर इष्टलिङ्ग के सामने फल आदि समर्पित करने के बाद भस्म, पुष्प आदि प्रदान करे। तत्पश्चात् मज्जन नामक नीराजन दिखाए॥२९॥ ''हे परिपूर्ण चित् और आनन्द स्वरूप, जलाध्यक्ष सदाशिव ईश! सुशोभन मज्जन नामक नीराजन का ग्रहण कीजिए''॥३०॥ इस मन्त्र से नीराजन दिखाकर फिर से पाद्य, अर्घ्य और आचमनीय पूर्वोक्त मन्त्रों के द्वारा प्रदान करे। बाद में स्नान भी कराए॥३१॥ ''हे पञ्चब्रह्ममय शरीरवाले, पञ्चकृत्यों में लगे भक्तवत्सल शिव! इस पञ्चामृत स्नान को स्वीकार करें''॥३२॥ ''हे आकाश गङ्गा से बंधे जटाजूट से भासित जगदीश्वर! इस शुद्धजल के स्नान को स्वीकार

आकाशवाहिनीनद्धजटापटलभासुर ।
शुद्धोदकस्नानमिदं गृहाण जगदीश्वर ।।३३।।
अभिषेकं विधायैवं तीर्थं स्वशिरसि क्षिपेत् ।
पादतीर्थं गृहीत्वाऽथ नमस्कृत्याऽऽदरेण तु ।।३४।।
भवाम्बुनिधिनिस्तारसेतवे मोक्षहेतवे ।
पापप्रशमनार्थाय पादतीर्थाय ते नमः ।।
इति प्राश्य ततः स्वेष्टलिङ्गमुद्वर्त्य वाससा ।।३५।।
अशेषज्योतिरुद्भासकोत्तमज्योतिरात्मक ।
अङ्गारतापनमिदं कुरु शीतापनोदनम् ।।
इत्यग्निना विधूमेन तापनं संविधाय च ।।३६।।
अशेषवासनोन्मूलकारणात्मीयभासन ।
धूपसंवीजनं शम्भो गृह्यतां भक्तवत्सल ।।
संवीज्य धूपमित्येवं पुनर्धूपं प्रसारयेत् ।।३७।।
अनन्तमाङ्गल्यगुणरत्नरत्नाकरायित ।
नीराजनं गृहाणेश माङ्गल्याख्यं सदाशिव ।।
इति माङ्गल्यनीराजनं दत्त्वा वस्त्रमर्पयेत् ।।३८।।

करें" ।।३३।। इन मन्त्रों से अभिषेक करके जल को अपने सिर पर छिड़के। बाद में चरणामृत लेकर सादर नमस्कार करे ।।३४।। "हे भवरूपी समुद्र को पार करने के लिए पुल के समान, मोक्ष के कारण-भूत शिव! पापों का शमन करने के निमित्त तुम्हारे चरण-जल को नमस्कार है।" इस मन्त्र से जल को पीकर अपने इष्टलिङ्ग को कपड़े से पोंछकर ।।३५।। "सम्पूर्ण ज्योतियों को प्रकाशित करने वाले ज्योति-स्वरूप शिव! शीत को दूर करने वाले अंगार द्वारा इस तपाए जाने को स्वीकार करें।" इस मन्त्र से धूम-रहित अग्नि से तपाकर ।।३६।। "सम्पूर्ण वासनाओं को जड़ से उखाड़ने के कारण-स्वरूप, स्वयं प्रकाशित होने वाले, भक्तवत्सल शम्भो! धूप का प्रदर्शन स्वीकार करें।" इस मन्त्र से धूप को घुमाकर फिर धूप को फैलाए ।।३७।। "अनन्त मङ्गलकारी गुणरत्नों के रत्नाकर समुद्र स्वरूप सदाशिव ईश! माङ्गल्य नामक नीराजन ग्रहण करें।" इस मन्त्र से माङ्गल्य नामक नीराजन दिखाकर वस्त्र समर्पित करे ।।३८।। "हे नृसिंह[६] के चर्म का दुपट्टा तथा हाथी के चर्म से शोभित जगदीश्वर

---

६. नरव्याघ्र का चर्म धारण करना = व्याघ्रकृत्तिं वसानम्।

नृसिंहचर्मोत्तरीय गजाजिनपरिष्कृत।
वस्त्रयुग्ममिदं शम्भो गृहाण जगदीश्वर॥
वस्त्रयुग्मं समर्प्यैवं भूतिं संधारयेत् ततः॥३९॥
फालाग्निदग्धप्रद्युम्नवपुर्भसितभूषित।
शिवाग्निजमिदं भस्म ध्रियतां जगतां पते॥
इति संधार्य सजलं भस्म गोमयसंभवम्॥४०॥
फणामणिघृणीभ्राजिनागयज्ञोपवीतक।
यज्ञेश्वर गृहाणेश स्वर्णयज्ञोपवीतकम्॥
इति मन्त्रेणोपवीतं दत्वा गन्धं समर्पयेत्॥४१॥
कामाङ्गभसितालेपसमुज्ज्वलशुभाङ्गक।
सुगन्धी चन्द्रसम्बन्धः श्रीगन्धः प्रतिगृह्यताम्॥
इति गन्धं साक्षतं च दत्त्वा तेन विलेपयेत्॥४२॥
अक्षयानन्दसंधायकाक्षयाङ्गप्रदायक।
अक्षतान् सुगृहाणेश पक्षिवाहनपूजित॥
इति शुभ्राक्षतान् दत्त्वा कर्पूरं दीपयेत् ततः॥४३॥

शम्भो! इस वस्त्र के जोड़े को ग्रहण करें।'' इस मन्त्र से वस्त्रों का जोड़ा समर्पित करके बाद में भस्म धारण कराए॥३९॥ ''भालस्थित नेत्र की अग्नि से जले प्रद्युम्न (कामदेव)[7] के शरीर की भस्म से भूषित हे जगत्पते! शिवाग्नि से उत्पन्न इस भस्म को धारण करें।'' इस मन्त्र से गोबर से बने जल में मिले भस्म को चढ़ाकर॥४०॥ ''फण की मणि से युक्त नाग के यज्ञोपवीत वाले हे यज्ञेश्वर शिव ईश! सोने का यज्ञोपवीत ग्रहण कीजिए।'' इस मन्त्र से यज्ञोपवीत समर्पित करके गन्ध समर्पित करे॥४१॥ ''काम के शरीर के भस्म का लेपन करने से उज्ज्वल और शुभ अङ्गवाले हे शिव! सुगन्धयुक्त, चन्द्रमा से सम्बद्ध श्रीगन्ध[8] (चन्दन) ग्रहण करें।'' इस मन्त्र से अक्षत युक्त चन्दन प्रदान करके उसका लेपन करे॥४२॥ ''अक्षय आनन्द का उपभोग करने वाले अक्षय अङ्गों को देने वाले, गरुडवाहन विष्णु द्वारा पूजित हे ईश! अक्षत ग्रहण कीजिए।'' इस मन्त्र से सफेद अक्षत चढ़ाकर बाद में कर्पूर

---

७. प्रद्युम्न = कामदेव (अमरकोश १.१.२५)।

८. आह्लाद वाचक चदि धातु से चन्द्र और चन्दन ये दोनों शब्द बनते हैं। अतः इनमें आह्लादकत्व सम्बन्ध है।

सुरयोषामणिश्रेणीदत्तनीराजनोज्ज्वल ।
नीराजनं गृहाणेश कर्पूराख्यं सदाशिव ॥
इति कर्पूरनीराजनं दत्त्वा माल्यमर्पयेत् ॥४४॥
विधिविष्णुकपालालिमालालङ्कृतविग्रह ।
माल्यं गृहाण देवेश सुमजालमनोरमम् ॥
इति माल्यं प्रदायाथाभरणानि समर्पयेत् ॥४५॥
चन्द्रमःखण्डकोटीरफणिकुण्डलमण्डित ।
भूषणानि गृहाणेश सौवर्णानि जगन्नुत ॥
भूषणैरित्यङ्कृत्य नानारत्नसमुज्ज्वलैः ॥४६॥
भवानीभावमधुरलीलालोकावलोकित ।
नीराजनं गृहाणेश शृङ्गाराख्यं सदाशिव ॥४७॥
इति नीराजनं दत्त्वा पूजयेत् पत्रपुष्पकैः ।
अष्टाभिर्नामभिश्चैवमष्टोत्तरशतेन वा ॥४८॥
पुष्पवद्रथचक्राढ्य पुष्पायुधवधोद्यत ।
नानाविधानि पुष्पाणि गृहाणेश नमोऽस्तु ते ॥
पुष्पैरेवं सुसंपूज्य विल्वपत्राणि चार्पयेत् ॥४९॥

जलाए॥४३॥ "सुरों की स्त्रीरत्नों की भीड़ द्वारा दिए गए नीराजन से चमकने वाले हे ईश सदाशिव! कर्पूर का नीराजन स्वीकार कीजिए"। इस मन्त्र से कर्पूर का नीराजन करके माला समर्पित करे॥४४॥ "ब्रह्मा, विष्णु के द्वारा दी गई कपालों की लड़ियों वाली माला से अलङ्कृत शरीरवाले हे देवेश! फूलों की जाल से बनी मनोरम माला ग्रहण करें।" इस मन्त्र से माला अर्पित करने के बाद आभूषणों का समर्पण करे॥४५॥ "चन्द्रमा के टुकड़े जैसी चमकवाले सर्पों के कुण्डलों से सजे, जगत् द्वारा नमस्कृत हे ईश! सोने के भूषण ग्रहण करें"। इस मन्त्र से अनेक रत्नों से दमकते आभूषणों से सजाकर॥४६॥ "भवानी के भाव से मधुर लीलाओं के प्रकाश से आलोकित हे ईश, सदाशिव! शृङ्गार नामक नीराजन स्वीकार करिए"॥४७॥ इस मन्त्र से नीराजन प्रदान करके पत्तों और फूलों तथा आठ या एक सौ आठ नामों से पूजा करे॥४८॥ "पुष्पों से युक्त रथ के चक्रों से सुसज्जित पुष्पायुध काम के वध के लिए उद्यत हे ईश! अनेक प्रकार के पुष्पों को ग्रहण करें, आपको नमस्कार है।" इस मन्त्र से पुष्पों द्वारा पूजन करके विल्वपत्रों को अर्पित करे॥४९॥ "तीन पत्तियों वाले, कान्ति से युक्त, चमकते रंग वाले, सुन्दर श्रीवृक्ष (विल्व) के पत्रों

त्रिसुपर्णं स्फुरद्वर्णं श्रिया चीर्णं सुशोभनम्।
कुण्डलीकृतगोकर्ण गृहाण श्रीद्रुपर्णकम्॥
इति विल्वदलं दत्वा भस्म सर्वोपरि क्षिपेत्॥५०॥
कपर्दवेष्टनानन्तभोगच्छत्रपरिष्कृत।
श्वेतच्छत्रं गृहाणेश मुक्तादामाभिशोभितम्॥
छत्रमेवं समर्प्याथ चामरद्वयमर्पयेत्॥५१॥
विधिविष्णुकराब्जोद्यच्चामरद्वयवीजित।
चामराभ्यां वीजयामि प्रसीद करुणालय॥
चामराभ्यां वीजयित्वा तालवृन्तेन वीजयेत्॥५२॥
तालसंवादनव्यग्रविधितोषितमानस।
वीजये तालवृन्तेन करुणावरुणालय॥
तालवृन्तेन संवीज्य दर्पणं च प्रदर्शयेत्॥५३॥
आदर्शविमलाकारादर्शभास्वत्कपोलक।
आदर्शं दर्शयाम्यद्य दुर्दर्शनिजरूपक॥
दर्पणं दर्शयित्वैवं घण्टानादं समर्पयेत्॥५४॥

को हे गोकर्ण सर्पों[१] को कुण्डल बनाकर पहनने वाले शिव! ग्रहण करें।" इस मन्त्र से विल्वपत्रों को चढ़ाकर भम्म को सबके ऊपर रख दे॥५०॥ "कौडियों (कपर्द) के घेरों से अनन्त फैलाव वाले छत्र से चारों ओर से घिरे (परिष्कृत) हे ईश! मोतियों की माला से शोभित श्वेत छत्र को स्वीकार करें।" इस मन्त्र से छत्र समर्पित करके दो चंवरों को अर्पित करे॥५१॥ "ब्रह्मा और विष्णु के हस्तकमलों में उठे दो चंवरों द्वार वीजित हे करुणामय! दो चंवर डुलाता हूँ, आप प्रसन्न हों।" इस मन्त्र से दो चंवरों की हवा देकर ताड़ के पंखे से हवा झले॥५२॥ "तालों को मिलाने में व्यग्र ब्रह्मा ने जिसके मन को संतुष्ट कर दिया है, ऐसे हे करुणाकर शिव! मैं ताड़ के पंखे से हवा करता हूँ।" इस मन्त्र से ताड़ के पंखा झल कर दर्पण दिखाए॥५३॥ "शीशे जैसे विमल आकार वाले, शीशे में चमकते कपोलों वाले, जिनका अपना स्वरूप कठिनाई से दिखाई देता है, ऐसे हे शिव! मैं आज आपको दर्पण दिखाता हूँ।" इस मन्त्र से दर्पण दिखाकर घंटा के स्वर को समर्पित करे॥५४॥ "अपने नादस्वरूप सुन्दर घंटा से शोभित कमल हस्त वाले हे नादस्वरूप शिव! प्रिय घंटा-नाद

---

१. सर्प की एक जाति।

नादस्वरूपविलसद्घण्टाशोभिकराम्बुज ।
घण्टानादं श्रावयामि नादरूप शृणु प्रियम् ॥
घण्टानादं समर्प्यैवं शङ्खमापूरयेत् ततः ॥५५॥
शङ्खध्मानक्रियासक्तगणेन्द्रगणसंवृत ।
शृणु शङ्खरवं देव कम्बुग्रीवमनोरमम् ॥
शङ्खं निनाद्यैवमतो गीतमाश्रावयेदपि ॥५६॥
कम्बलाश्वतरोद्गीतसमाकर्णनतत्पर ।
गीतं संश्रावयाम्यद्य भवच्चित्रचरित्रकम् ॥
गीतमाश्राव्य च ततो वाद्यं संश्रावयेत् तदा ॥५७॥
मुरारिवादितमहामुरजध्वनितोषित ।
वाद्यं संश्रावये शम्भो डमरुध्वननप्रिय ॥
इति वाद्यं निनाद्याथ नृत्तं सम्यक् प्रदर्शयेत् ॥५८॥
निजानन्दातिरेकोत्थमहाताण्डवपण्डित ।
नृत्तं विरचयाम्यद्य महानट विलोकय ॥५९॥
इति नृत्तं समर्प्यैव करेणाभिनयात्मकम् ।
मुष्टैचवाङ्गुष्ठयुतया प्रदक्षिणमथार्पयेत् ॥६०॥

सुनाता हूँ।" इस मन्त्र से घंटा बजा कर शङ्ख फूंके ॥५५॥ "शङ्ख बजाने के कार्य में लगे गणों के प्रमुखों के झुंड से घिरे देव! कौड़ियों की तरह की ग्रीवा से युक्त[१०] मनोरम शङ्ख सुनिए।" इस मन्त्र से शङ्ख बजाकर फिर गीत भी सुनाए ॥५६॥ "कम्बल और अश्वतर"[११] द्वारा गाए गए गीतों को सुनने में तत्पर हे शिव! आज में आपके विचित्र चरित्रों के गीत सुनाता हूँ।" इस मन्त्र को पढ़कर गीत गाने के बाद वाद्य बजाकर सुनाए ॥५७॥ "विष्णु के द्वारा बजाए बहुत बड़े मृदंग की ध्वनि से संतुष्ट, डमरु बजाना जिसको प्रिय है, ऐसे हे शम्भो! मैं वाद्य सुनाता हूँ।" इस मन्त्र से वाद्य बजाकर भलीभांति नृत्त[१२] प्रदर्शित करे ॥५८॥ "अपने आनन्दातिरेक के कारण उत्पन्न महाताण्डव में प्रवीण हे महानट शङ्कर! आज मैं नृत्य कर रहा हूँ, देखिए" ॥५९॥ इस मन्त्र से नृत्य समर्पित करके हाथों द्वारा अभिनय रूप में अंगूठे को ऊपर करके

---

१०. ऐसा शङ्ख जिसके ऊपर का भाग तीन रेखाओं से वलयित हो।

११. ये सम्भवतः किन्नर जाति के गायन प्रवीण शिव भक्तों के नाम हैं।

१२. नृत्त और नृत्य पर्याय हैं।

प्रदक्षिणक्रियासक्तब्रह्मादिसुरसेवित ।
प्रदक्षिणत्रयं कुर्वे गृहाण करुणानिधे॥
प्रदक्षिणत्रयं कृत्वा नमस्कुर्यादनेकशः॥६१॥
नमो नमो भूभृदपत्यजानये नमो नमो भस्मितचित्तयोनये।
नमो नमः शिक्षितभानुसूनवे नमो नमो भूषितशीतभानवे॥
नमांसि तु समर्प्यैवं स्तुतिं कुर्यादनन्तरम्॥६२॥
ब्रह्मणां ब्रह्मणे तुभ्यं रक्षितॄणां च रक्षिणे।
हर्तॄणामपि संहर्त्रे देवदेवाय ते नमः॥
स्तुतिं कृत्वा ततः कुर्याद् धूपसंवीजनं बुधः॥६३॥
महाश्मशानदहनधूमधूपावृताङ्गक ।
धूपसंवीजनं शम्भो गृह्यतां भक्तवत्सल॥६४॥
धूपं संवीज्य च मुहुस्तथा धूपं प्रसार्य च।
महानीराजनमपि प्रज्वाल्य च समर्पयेत्॥६५॥
माङ्गल्यहेतवे सर्वमङ्गलालिङ्गितात्मने।
मङ्गलार्थाभिधानाय महादेवाय मङ्गलम्॥•
इष्टलिङ्गस्वरूपायाभीष्टदायास्तु मङ्गलम्॥६६॥

मुट्ठी बनाकर प्रदक्षिणा अर्पित करे॥६०॥ "प्रदक्षिणा करने में लगे ब्रह्मा आदि देवों से सेवित हे करुणानिधे! मैं तीन प्रदक्षिणाएं कर रहा हूँ, जिन्हें स्वीकार करें।" इस मन्त्र से तीन प्रदक्षिणाएँ करके अनेक बार नमस्कार करे॥६१॥ "हे पर्वतपुत्री के पति! तुम्हें बार-बार नमस्कार करता हूँ। हे चित्त में जन्म लेनेवाले काम को जलानेवाले! मैं बार-बार नमस्कार करता हूँ। हे सूर्यपुत्र यम को पाठ पढ़ाने वाले! तुम्हें बार-बार नमस्कार है। हे शीतरश्मि चन्द्रमा से अलङ्कृत! तुम्हें बार-बार नमन है।" इस मन्त्र से नमस्कार समर्पित कर के बाद में स्तुति करे॥६२॥ "ब्रह्माओं के भी ब्रह्मा, रक्षकों के (विष्णु) के भी रक्षक, प्राणहरण करने वालों (यमों) के भी संहारक, हे देवों के देव! तुम्हें नमस्कार है।" इस मन्त्र से स्तुति करने के बाद विद्वान् साधक धूप दिखाए॥६३॥ "महाश्मशान[१३] (मणिकर्णिका) की अग्नि से निकले धुएँ रूपी धूप से आच्छादित अंग वाले भक्तवत्सल शम्भो! धूप स्वीकार करें"॥६४॥ इस मन्त्र से बार-बार धूप दिखा कर धूप को चारों ओर फैलाने के बाद महानीराजन भी जलाकर समर्पित करे॥६५॥ "मङ्गल के कारणभूत, सर्वमङ्गला पार्वती जिसकी आत्मा में लिपटी हुई है, 'मङ्गल' शब्द का अर्थ, अर्थात् शिव जिसका नाम है, उस महादेव को मङ्गल समर्पित है। इष्टलिङ्ग स्वरूप, अभीष्ट

---

१३. मणिकर्णिका काशी में महाश्मशान के नाम से प्रसिद्ध है।

प्राणेषु च मनोमध्ये ज्योतिर्लिङ्गस्वरूपिणे।
प्राणग्रन्थिस्वरूपाय प्राणलिङ्गाय मङ्गलम्॥६७॥
भावग्राह्याय पूर्णाय भावाभावैकहेतवे।
कलासर्गकृते तुभ्यं भावलिङ्गाय मङ्गलम्॥
महानीराजनं दत्त्वा याञ्चां कुर्यादनन्तरम्॥६८॥
याचेऽहं याचेऽहं वचसि सततं नामरुचिरं
याचेऽहं याचेऽहं मनसि सततं भावरचनाम्।
याचेऽहं याचेऽहं शिव तव पदाम्बोजभक्तिं
याचेऽहं याचेऽहं पुनरपि च तामेव सततम्॥६९॥
नाधिकं मुक्तसंप्राप्यमशोकमचलं सुखम्।
त्वत्पदं देहि मे शीघ्रं न जाने प्रार्थ्यमुत्तमम्॥
इत्येवं याचनां कृत्वा ततो विज्ञप्तिमाचरेत्॥७०॥
भृत्यापराधा नमसा शाम्यन्तीति नयेन वै।
नमस्येऽतोऽपराधान्मे क्षमस्व करुणानिधे॥
इति विज्ञापनां कृत्वा निवेद्यं प्रोक्षयेत् ततः॥७१॥

फल देने वाले को मङ्गल समर्पित है॥६६॥ प्राणों में और मन के बीच ज्योतिर्लिङ्ग रूप में प्राणग्रन्थि स्वरूप प्राणलिङ्ग के लिए मङ्गल अर्पित है॥६७॥ भावना द्वारा ग्राह्य, भाव और अभाव के एकमात्र कारणभूत, कलाओं की सृष्टि करने वाले भावलिङ्ग को मङ्गल अर्पित है।" इस मन्त्र से महानीराजन करने के बाद मांगन मांगे॥६८॥ "मांगता हूँ, मांगता हूँ, अपने वचन में तुम्हारे रुचिर नाम को। मांगता हूँ, मांगता हूँ अपने मन में शिव के प्रति भावों की रचना को। मांगता हूँ, मांगता हूँ हे शिव! तुम्हारे चरणों में भक्ति को। पुनः भी मांगता हूँ, मांगता हूँ उसी भक्ति की निरन्तरता को॥६९॥ कुछ अन्य की प्राप्ति को छोड़कर इससे अधिक कुछ नहीं मांगता कि हे शिव! मुझे शोकरहित, अचल सुख स्वरूप अपने चरण शीघ्र दें। इससे उत्तम किसी अन्य प्रार्थनीय वस्तु को मैं नहीं जानता।" इस प्रकार याचना करने के बाद विज्ञापना करे॥७०॥ "नमन करने से भृत्य के अपराध शान्त हो जाते हैं, इस प्रथा के अनुसार मैं नमस्कार करता हूँ। इसलिए हे करुणानिधे! मेरे अपराधों को क्षमा करो।" इस तरह विज्ञापना करके के बाद नैवेद्य पर जल छिड़के॥७१॥ "सविता

देवस्य सवितुर्मध्ये यो भर्गो नो धियः क्रमात् ।
प्रचोदयात् तद्वरेण्यं शरण्यं समुपास्महे ॥७२॥
इति प्रोक्ष्य निवेद्यं तु परिषिञ्चेत् समन्ततः ।
परिषेचनकं कृत्वा षड्लिङ्गार्पणमाचरेत् ॥७३॥
अवाङ्मानससंवेद्यानन्दबोधसुधाम्बुधे ।
नीराजनं गृहाणेदमानन्दाख्यं सदाशिव ॥
इति नीराजनं दत्वा ताम्बूलं च समर्पयेत् ॥७४॥
गुणत्रयक्रियादूर गुणत्रयसमन्वित ।
गृहाणेदं सकर्पूरं ताम्बूलं तापसार्चित ॥
इति दत्त्वा च ताम्बूलं नीराजनमथार्पयेत् ॥७५॥
अम्बाकराम्बुजानीतताम्बूलग्रहणोत्सुक ।
नीराजनं गृहाणेश ताम्बूलाख्यं सदाशिव ॥
इति नीराजनं दत्वा मन्त्रपुष्पमथार्पयेत् ॥७६॥
विष्ण्वादिविबुधानन्तपुष्पाञ्जलिसमर्चित ।
पुष्पाञ्जलिं गृहाणेश पुष्पायुधनिषूदन ॥
इति पुष्पाञ्जलिं दत्त्वाऽसंख्यं नीराजनं दिशेत् ॥७७॥

देवता के मध्य में जो तेज है, वह धीरे धीरे हमारी बुद्धि को प्रेरित करे। मैं उस वरेण्य और शरण योग्य[१४] शिव की उपासना करता हूँ" ॥७२॥ इस तरह जल छिड़ककर नैवेद्य के चारों ओर गिरा दे। जल गिराने के बाद षड्लिङ्गार्चन करे ॥७३॥ "वाणी और मन के द्वारा न जाने जाने योग्य आनन्द के बोधरूपी अमृत के सागर हे सदाशिव! आनन्द नामक नीराजन ग्रहण करिए"। इस मन्त्र से नीराजन दिखाकर ताम्बूल समर्पित करे॥७४॥ "सत्त्व, रजस् और तमस् इन तीनों गुणों की क्रिया से दूर पर त्रिगुण से समन्वित हे तपस्वियों द्वारा अर्चित शिव! कर्पूरयुक्त इस ताम्बूल का ग्रहण करें।" इस मन्त्र से ताम्बूल प्रदान करने के बाद नीराजन अर्पित करे ॥७५॥ "अम्बा के हाथों से लाए गए ताम्बूल के ग्रहण के लिए उत्सुक हे सदाशिव ईश! ताम्बूल नामक नीराजन ग्रहण करें।" इस मन्त्र से नीराजन करके फिर मन्त्र-पुष्पाञ्जलि प्रदान करे ॥७६॥ "विष्णु आदि देवताओं द्वारा समर्पित अनन्त पुष्पाञ्जलियों से पूजित हे पुष्पायुध कामदेव का नाश करने वाले ईश! पुष्पाञ्जलि स्वीकार करिए।" इस मन्त्र से पुष्पाञ्जलि समर्पित करने के बाद असंख्य नामक नीराजन दिखाए ॥७७॥

---

१४. गायत्री मन्त्र यों है— तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ (शु.य. ३६.३)।

असंख्येयसहस्रश्रीरुद्ररूपावृताखिल ।
नीराजनं गृहाणेदमसंख्यातं सदाशिव ॥
नीराजनमसंख्यातं दत्त्वा वस्त्रेण वेष्टयेत् ॥७८॥
तन्तुना पटवन्नैजरूपेणावृतविश्वक ।
वस्त्रेण वेष्टयामीष्टलिङ्गरूप नमोऽस्तु ते ॥
इति वस्त्रेण संवेष्ट्य पेटिकायां सुविन्यसेत् ॥७९॥
सद्भक्तहृदयावास जगदावास शाश्वत ।
निवेशयामि हृदये सुखं वस सतीसख ॥
पेटिकायामिति न्यस्येदेवमुक्तं महार्चनम् ॥८०॥

सुवासिनीनामयमाराधनक्रमः

पाद्यादिपात्ररहितमिदं गुर्वर्चनं भवेत् ।
अथावसरपूजोपचारयोगाल्लघुर्भवेत् ॥
सुवासिनीनां मुख्योऽयं लघुराराधनाविधिः ॥८१॥

"अगणित हजारों श्रीरुद्रों के रूप से सब कुछ को घेर रखने वाले हे सदाशिव! इस असंख्यात नामक नीराजन को ग्रहण करें।" इस मन्त्र से असंख्यात नामक नीराजन प्रदान करके इष्टलिङ्ग को वस्त्र से लपेट दे॥७८॥ "जैसे तागों से कपड़ा बुना होता है, वैसे ही अपने स्वरूप से विश्व को घेरने वाले हे इष्टलिङ्ग रूप शिव! मैं तुम्हें वस्त्र से लपेट रहा हूँ। तुमको नमस्कार है।" इस मन्त्र से इष्टलिङ्ग को वस्त्र में लपेट कर पेटी में भली भांति रख दे॥७९॥ "हे सद्भक्तों के हृदय में रहने वाले, हे जगत् में तथा जगत् को अपने में रखने वाले, हे शाश्वत, हे सती को सुख देने वाले! मैं आज तुम्हें हृदय में रखता हूँ, सुखपूर्वक पेटी में निवास करो।" इस मन्त्र से पेटी में रख दे। इस प्रकार महापूजा बतलाई गई है॥८०॥

यह महापूजा पाद्यादि के पात्रों से रहित होती है। अवसर पूजा के उपचार के योग से यह छोटी पूजा हो सकती है। यह छोटी आराधना की विधि स्त्रियों के लिए मुख्य रूप से बतलाई गई है॥८१॥ पूजा का यह तान्त्रिक विधान बताया

विधानमिदमर्चायास्तान्त्रिकं समुदाहृतम्।
सर्वमुक्तं समासेन किमतः श्रोतुमिच्छसि ॥८२॥

इति श्रीकारणागमे उत्तरभागे पार्वतीपरमेश्वरसंवादे क्रियापादे तान्त्रिकपूजाविधिकथनं नाम अष्टमः पटलः॥८॥

गया। सब कुछ संक्षेप में कह दिया गया। इसके बाद अब तुम क्या सुनना चाहती हो? ॥८२॥

श्रीकारणागम के उत्तरभाग में श्रीपार्वतीपरमेश्वरसंवादरूपक्रियापादान्तर्गत तान्त्रिकपूजाविधिकथन नामक अष्टम पटल समाप्त हुआ॥८॥



नवमः पटलः

देव्युवाच

विद्येशान महादेव सर्वज्ञादिगुरो विभो।
अर्चाविधानश्रवणात् कृतार्थाऽस्मि भवन्मुखात्॥१॥
श्रोतुकामाऽस्मि नियमान् दीक्षितानां विशेषतः।
ब्रूहि तानखिलानीश पाहि मां करुणाकर॥२॥

महादेव उवाच

वक्ष्यामि शृणु कल्याणि नियमानखिलानपि।
मत्पूजातत्परेणाशु मत्प्रसादाभिकाङ्क्षिणा॥३॥

दीक्षितानां नियमाः

पत्राण्यपि प्रसूनानि वर्तिकाश्च जपस्तथा।
संख्या नियमतो नित्यं ग्रहणीया न चान्यथा॥४॥
दीक्षासंस्काररहितैर्जनैः स्पृष्टं जलादिकम्।
नोपयोज्यं हि कृत्येषु मदर्पणमुखादिषु॥५॥
नेक्षेत पूजावेलायां दीक्षासंस्कारवर्जितान्।
न कुप्येच्चिन्तयेदन्यान् नान्यैः संल्लापमाचरेत्॥६॥

देवी ने कहा —

हे विद्याओं के नियन्ता (विद्येशान), महादेव, सर्वज्ञ, आदिगुरु, विभो! आपके मुखसे अर्चा का विधान सुनकर मैं कृतार्थ हूँ॥१॥ दीक्षितों के नियमों को विशेषरूप से सुनना चाहता हूँ। हे ईश! उन सबको बतलाइए। हे करुणाकर! मेरी रक्षा कीजिए॥२॥

महादेव ने कहा —

हे कल्याणि! सुनो, शिव की पूजा में तत्पर और शिव की प्रसन्नता को शीघ्र पाने की कामना करने वाले साधक के सभी नियमों को बतलाता हूँ॥३॥

पत्र, पुष्प, बत्तियाँ, जप इनको सदा निश्चित संख्या के अनुसार करना या ग्रहण करना चाहिए, अन्यथा नहीं करना चाहिए॥४॥ दीक्षासंस्कार से रहित लोगों द्वारा छूए जल आदि का शिवार्पण आदि कर्मों में उपयोग नहीं करना चाहिए॥५॥ पूजा के समय दीक्षासंस्कार से रहित लोगों की ओर नहीं देखना चाहिए। क्रोध नहीं करना, दूसरों के बारे में नहीं सोचना चाहिए, दूसरों से बात-चीत नहीं करनी चाहिए॥६॥

लिङ्गमङ्गे मुखे भस्म गले रुद्राक्षमेव च।
मन्नाम वाचि च तथा न कदापि वियोजयेत्॥ ७॥
वस्त्रमाभरणं पुष्पमन्नपानाद्यमौषधम्।
न मेऽसमर्प्य सेवेत प्राणैः कण्ठगतैरपि॥ ८॥
निवेदितमथान्यस्मै न तु मह्यं निवेदयेत्।
समर्पितं च लिङ्गाय न चान्यस्मै समर्पयेत्॥ ९॥

देव्युवाच

एवं यदि महेशान कथं स्त्रीणामिदं भवेत्।
पत्न्या हि भर्तुरुच्छिष्टं नित्यं सेव्यं समीरितम्॥
न भोज्यमसमर्प्येति गदितं भवतैव तु॥१०॥
भर्त्रा हि स्वीयलिङ्गाय समर्पितमिदं पुरा।
कथं पुनर्निवेद्यं स्याद् भोज्यं वाप्यसमर्प्य च॥
एनं मे संशयं छिन्धि करुणावरुणालय॥११॥

महादेव उवाच

साधु पृष्टं त्वया देवि शृणु गोप्यमिदं प्रिये।
निवेदने विशेषोऽस्ति वक्ष्याम्यवहिता भव॥१२॥

शरीर पर लिङ्ग, ललाट पर भस्म, गले में रुद्राक्ष, वाणी में शिव का नाम इनको कभी नहीं छोड़ना चाहिए॥७॥ वस्त्र, आभूषण, पुष्प, अन्न, पान आदि औषध का, चाहे कण्ठ में प्राण भी अटका हो तब भी, बिना शिव को समर्पित किये सेवन नहीं करना चाहिए॥८॥ जो दूसरों को दिया गया है, उसे शिव को समर्पित न करे। इष्टलिङ्ग को समर्पित वस्तुओं को दूसरों को समर्पित न करे॥९॥

देवी ने कहा—

हे महेशान! यदि ऐसा है, तब स्त्रियां ऐसा कैसे कर सकती हैं? कहा गया है कि पत्नी नित्य प्रति पति का उच्छिष्ट भोजन करे। पर आपने ही तो कहा है कि बिना शिव को समर्पित किए कुछ नहीं खाना चाहिए॥१०॥ इस भोज्य पदार्थ को पहिले ही अपने इष्टलिङ्ग को समर्पित कर रखा है, फिर कैसे इसका नैवेद्य लगाया जाएगा, अथवा बिना समर्पित किए कैसे इसका पत्नी द्वारा ग्रहण होगा? हे करुणासागर! मेरे इस संशय को दूर कीजिए॥११॥

महादेव ने कहा—

हे देवि! तुमने ठीक पूछा। हे प्रिये! एक गोपनीय बात बतलाता हूँ, जिसे सुनो। निवेदन के बारे में कुछ विशेष बात है, जिसे बतलाता हूँ, सावधान हो जाओ॥१२॥

द्विविधं नैवेद्यम्

लिङ्गभोगस्वरूपं चानुज्ञारूपमिति द्विधा।
भर्तृशेषादिरूपस्य प्रसादस्य गुरोर्मम॥
तीर्थस्य चार्पणं प्रोक्तमनुज्ञारूपमेव हि॥१३॥
इष्टानिष्टप्रभेदेन देहिनां कर्मयोगतः।
लभ्यन्ते ह्यनिशं भोगास्तेषु तेष्वपि मद्व्रती॥१४॥
इष्टे तु भोगरूपं चानुज्ञारूपमनिष्टके।
निवेदनं प्रकुर्वीत ग्राम्यधर्मादिके तथा॥१५॥

देव्युवाच

भर्तृशेषो न योज्यः स्याद्यदि भोगार्पणात्मना।
स्त्रीणामनुदिनं भग्नं तादृशं हि समर्पणम्॥१६॥
यतश्च प्रत्यहं सेव्यो भर्तृशेषः समीरितः।
अथवाऽप्यर्चनं कृत्वा कथं कुर्यान्निवेदनम्॥१७॥
भर्तृशेषो न योग्यो हि चेदन्येन पतिव्रता।
भुञ्जीतान्यतरत् तत्र सा किं ब्रूह्यथवोभयम्॥१८॥

भोज्य पदार्थ दो प्रकार का होता है— इष्टलिङ्ग का नैवेद्य तथा अनुज्ञारूप भोज्य। पति के खाने से बचे, गुरु शिव के तीर्थ को दूसरों को देना अनुज्ञारूप ही होता है॥१३॥ शरीरधारियों के कर्मों के अनुसार इष्ट और अनिष्ट भोग मिलते हैं, पर उन भोगों के प्रति भी शिव का व्रत लेने वाला सदा॥१४॥ इष्ट को भोग के रूप में और अनिष्ट को अनुज्ञारूप में तथा अश्लील धर्मों को भी उसी रूप में शिव के प्रति निवेदन करे॥१५॥

देवी ने कहा—

यदि पति के खाने से बचा पदार्थ भोगार्पण रूप में नहीं निवेदित हो सकता, तब स्त्रियों द्वारा किया गया ऐसा समर्पण प्रतिदिन विच्छिन्न हो जाएगा॥१६॥ क्योंकि कहा गया है कि पति से छूटे पदार्थ का पत्नी को प्रतिदिन सेवन करना चाहिए। अथवा स्त्री पूजन करके फिर कैसे नैवेद्य रूप में भोग का निवेदन करेगी?॥१७॥ यदि पति से छूटा पदार्थ दूसरों द्वारा सेवनयोग्य नहीं है, तब क्या पतिव्रता उसके स्थान पर कुछ दूसरी वस्तु खाए या दोनों तरह के पदार्थ खाए? बताइए॥१८॥

महादेव उवाच

सुवासिनी समर्च्यापि भोगरूपनिवेदनम्।
अन्येनैव विधायानुज्ञाप्य तद् भर्तृशेषकम्॥
उभयं चैव भुञ्जीत भक्तियुक्ता मयि प्रिये॥१९॥
अनर्पितं यथाऽभोज्यमत्याज्यं मन्निवेदितम्।
मत्प्रसादपरित्यागी मत्प्रसादं स नार्हति॥२०॥

देव्युवाच

निवेदितं चेदत्याज्यं कथमत्रोपपद्यते।
दारेभ्यश्चैव शिष्येभ्यः कथं देयं प्रसादकम्॥२१॥
अर्थिभ्यो रौरवीयेभ्यः प्रदेयं वा जलं कथम्।
गण्डूषकरशुद्ध्यादि कथं समुपपद्यताम्॥२२॥
गण्डूषादौ प्रसादस्य त्यागः संभाव्यते खलु।
प्रसादस्य पवित्रत्वान्मुखशुद्धिः कथं भवेत्॥२३॥
अनर्पितेन पयसा कथं गण्डूष इष्यते।
समर्पितेन यदि तत् कथं समुपपद्यते॥२४॥

महादेव ने कहा—

हे प्रिये! शिव के प्रति भक्ति से युक्त पत्नी पूजन करके अन्य वस्तु का ही भोग रूप में निवेदन करे और पति से छूटे भोज्य को अनुज्ञा रूप में स्वीकार करके दोनों का भोजन करे॥१९॥ जिस प्रकार बिना अर्पित किया पदार्थ भोज्य नहीं है, उसी तरह शिव को अर्पित पदार्थ भी त्याज्य नहीं है। जो शिव के प्रसाद का परित्याग करता है, उसको शिव की कृपा नहीं प्राप्त हो सकती॥२०॥

देवी ने कहा—

यदि शिव को अर्पित भोज्य पदार्थ अत्याज्य है, तब कैसे बात बनेगी? पत्नी और शिष्यों को प्रसाद कैसे दिया जाएगा॥२१॥ याचकों और नरकस्थ पितरों को जल कैसे दिया जाएगा? कैसे कुल्ले या हाथ धोने के लिए जल का उपयोग उपपन्न होगा?॥२२॥ कुल्ला आदि करने में प्रसाद का त्याग संभव है और प्रसाद पवित्र होता है, अतः उस प्रसाद रूप जल से मुखशुद्धि कैसे होगी?॥२३॥ बिना अर्पित जल से कुल्ला कैसे किया जाएगा। यदि समर्पित जल से कुल्ला किया जाए तब यह बात कैसे उचित होगी?॥२४॥ यह निवेदन ही एक ऐसा विषय है,

निवेदनैकविषयो विशयो बाधते महान्।
एतत्सर्वं समावेद्य भक्तानीकं समुद्धर ॥२५॥

महादेव उवाच

दारादिभ्य: प्रसादस्य नारकिभ्यो जलस्य च।
प्रदानेनार्पिततत्यागदोषो नैवास्ति भामिनि ॥२६॥
त्यागस्याविधिमूलस्य निषेधविषयत्वत:।
यथाऽविधिकृतत्यागो न दोषो गुण एव हि ॥२७॥
गण्डूषमुखशुद्ध्यादिक्रियार्थार्पितवारिणा।
तास्ता: क्रिया हि कर्तव्या: कुर्वन्नेवं न दुष्यति ॥२८॥
प्रसादेऽतिपवित्रेऽपि मुखशुद्धेर्विधानत:।
तत्रावशकृतत्यागो न दोषो विधिमूलक: ॥२९॥
कणत्रयात्मना योऽयं गुर्वादेरुपयुज्यते।
लालासम्बन्धराहित्यात्तत्र शुद्धिर्न हीष्यते ॥३०॥

जिसके बारे में संशय मुझे बहुत परेशान कर रहा है। यह सब बातें बताकर हे प्रिय! भक्त गणों का उद्धार करो ॥२५॥

महादेव ने कहा —

हे भामिनि! पत्नियों को प्रसाद और नरकस्थित पितरों को जल देने से प्रसाद रूप में अर्पित वस्तु के त्याग का दोष नहीं होता ॥२६॥ ऐसा त्याग जो विधिमूलक नहीं है, वह निषेध का विषय होता है। पर जहाँ त्याग की विधि ही नहीं कही गई है, वहाँ त्याग में कोई दोष नहीं, बल्कि गुण ही है॥२७॥ कुल्ला, मुखशुद्धि आदि कार्यों के प्रति उपयोग में लाए जाने वाले जल से उन कार्यों को करना चाहिए। ऐसा करने से दोष नहीं होता ॥२८॥ यद्यपि शिव का प्रसाद अत्यन्त पवित्र होता है, पर मुखशुद्धि का विधान किया गया है। इसलिए वहाँ जल का त्याग करने पर कोई वश नहीं है, यह विधिमूलक होने के कारण दोषयुक्त नहीं है॥२९॥ तीन कणों के ग्रहण के रूप में गुरु[1] आदि के द्वारा जो प्रसाद उपयोग में आता है, उसमें लार का सम्बन्ध न होने के कारण अशुद्धि नहीं मानी गई है[2] ॥३०॥ जो

---

१. गुरु शिष्य द्वारा प्रदत्त भोजन में से केवल तीन अन्न कणों को खाता है, अत: उसमें लार का सम्बन्ध सम्भव नहीं है।

२. लार के सम्बन्ध होने से ही भोजन जूठा या अशुद्ध होता है।

मदर्चनपरो नित्यं मद्ध्यानाधीनचेतनः।
मन्नामचिन्तनोद्युक्तो नान्यदेवादिकं स्मरेत्॥३१॥

देव्युवाच

वर्णाश्रमैकनिष्ठानां नित्यनैमित्तिकादिषु।
अग्न्यादिपरिचर्याश्च प्राप्यन्तेऽहरहः किल॥
त्वदेकनिष्ठापरमैः कर्तव्यास्ताः कथं प्रभो॥३२॥

महादेव उवाच

राजैकसेवकस्यापि तदाज्ञावशतः प्रिये।
तन्मन्त्र्यादेश्च कैङ्कर्यं भृत्यस्य नहि दुष्यति॥३३॥
मन्निष्ठानामपि तथा मदाज्ञाश्रुतिचोदनात्।
नित्यनैमित्तिके चान्यदेवसेवा न दुष्यति॥३४॥
मदर्पणार्थरचितपाकशेषं प्रयत्नतः।
न प्रयच्छेदभक्तेभ्यो विजातीयेभ्य एव च॥३५॥

शङ्कर की पूजा में लगा है, जिसकी चेतना शिव के ध्यान में लगी हुई है, जो शिव के नाम का चिन्तन करने में लगा है, वह अन्य देवों आदि का स्मरण न करे॥३१॥

देवी ने कहा —

केवल वर्ण और आश्रम में निष्ठा रखने वालों को नित्य- नैमित्तिक आदि कर्म, अग्नि आदि की परिचर्या प्रतिदिन करनी होती है। हे प्रभो! केवल शिव में परम निष्ठा रखने वाले लोग उन कर्मों को कैसे करें॥३२॥

महादेव ने कहा —

केवल राजा का सेवक उस राजा की आज्ञा के वशीभूत होकर, हे प्रिये! राजा के मन्त्री आदि की भी आज्ञा का पालन कर देता है। सेवक का यह कार्य दोषपूर्ण नहीं होता॥३३॥ इसी प्रकार शिव के प्रति निष्ठा रखने वाला शिव की आज्ञाभूत श्रुति[३] के कहने पर नित्य-नैमित्तिक कर्मों में अन्य देवों की जो सेवा करता है, उससे दोषी नहीं होता॥३४॥ शिव को अर्पित करने के निमित्त बनाए भोजन के बचे अंश को उन्हे न देना, जो शिवभक्त नहीं है या जो विजातीय है॥३५॥ जो स्वयं शिवभक्ति युक्त होकर भी सिर्फ वाणी से भी दूसरे शैव को अधम मानता

---

३. वीरशैव परम्परा में सम्पूर्ण श्रुति शिव के आज्ञास्वरूप वचनों से युक्त मानी गई है।

यः स्वयं भक्तियुक्तोऽपि शैवं वाङ्मात्रतो जनम्।
अधमं मन्यते तस्य भक्तिर्व्यर्था महेश्वरि॥३६॥
तस्माद् भक्तियुतो मर्त्यो न्यूनमन्यूनमेव वा।
अधमं वाऽपि रुद्राक्षभस्मलिङ्गविभूषणम्॥
उत्तमोत्तमरूपेण पश्येत् सर्वमसंशयम्॥३७॥

देव्युवाच

वर्णाश्रमैकसक्तानां कथमत्रोपपद्यते।
विप्रेण ह्यन्यजातीयो भाव्यः स्यादुत्तमत्वतः॥
भाविते वर्णमर्यादा न कथं व्याहता भवेत्॥३८॥

महादेव उवाच

विप्रो विजातिभक्तांस्तु मनसैव हि पूजयेत्।
अन्यथा वर्तमानो हि लभते वर्णविच्युतिम्॥३९॥
अधोगतिनिवृत्तिं हि वर्णधर्मो नियच्छति।
समग्रा सुस्थिरा शुद्धा भक्तिर्मुक्तिं प्रयच्छति॥४०॥
वर्णाश्रमयुतानां हि भक्तिलोपो भवेद्यदि।
अधःपदोपलब्धिः स्यादन्त्ये सर्वाङ्गसुन्दरि॥४१॥

है उसकी भक्ति, हे महेश्वरि! व्यर्थ है॥३६॥ अतः शिवभक्ति से युक्त मनुष्य उस हीन या उच्च व्यक्ति को, या अधम को भी, जो रुद्राक्ष, भस्म और लिङ्गधारण किए हुए है, उन सबको संशय रहित उत्तमोत्तम रूप में देखे॥३७॥

देवी ने कहा—

केवल वर्ण और आश्रम में लगे लोगों की यह बात यहाँ कैसे उचित होगी कि विप्र अन्य जाति के लोगों को उत्तम समझे? यदि उत्तम समझे तब वर्ण की मर्यादा कैसे नष्ट न होगी?॥३८॥

महादेव ने कहा—

विप्र अन्य जाति के भक्तों को मन ही मन पूजित करे। यदि वह इसके विपरीत आचरण करे, तब वह स्ववर्ण से च्युत हो जाएगा॥३९॥ वर्णधर्म अधोगति से निवृत्त करता है, पर सुस्थिर, समग्र, शुद्ध, भक्ति मुक्ति देती है॥४०॥ यदि वर्णाश्रम का पालन करने वाले में भक्ति का अभाव हो, तब हे सर्वाङ्गसुन्दरि! अन्त में उसे अधम

अतः सर्वाङ्गसम्पूर्णभक्तियुक्तात्मनां प्रिये।
वर्णाश्रमीयधर्माणां निर्बन्धः सफलः स्मृतः ॥४२॥
इति श्रीकारणागमे उत्तरभागे पार्वतीपरमेश्वरसंवादे क्रियापादे
नियमोपदेशो नाम नवमः पटलः॥९॥

पद मिलता है॥४१॥ अतः हे प्रिये! सर्वाङ्ग परिपूर्ण भक्ति से युक्त लोगों द्वारा वर्णाश्रम धर्मों का पालन करना सफल माना गया है॥४२॥

श्रीकारणागम के उत्तरभाग में श्रीपार्वतीपरमेश्वरसंवादरूपक्रियापादान्तर्गत
नियमोपदेश नामक नवम पटल समाप्त हुआ॥



दशमः पटलः

देव्युवाच

शाम्भवानां हि शुद्धानां सततं लिङ्गधारिणाम्।
सम्प्राप्तेऽशुचिसंसर्गे लोकसंसर्गसम्भवे॥
नानाविधे कथं नु स्यात् प्रायश्चित्तं वदस्व मे॥१॥

महादेव उवाच

साधु पृष्टं महादेवि त्वया लोकहितेच्छया।
प्रायश्चित्तविधिं वक्ष्ये सदा लिङ्गाङ्गसङ्गिनाम्॥२॥
लिङ्गं हि सर्वदा शुद्धमशुद्धं सर्वदा वपुः।
अतः षडध्वसंशुद्धियोगाच्छुद्धं विधाय तत्॥३॥
प्रतिष्ठितं लिङ्गमत्र ततः शारीरदोषतः।
न लिङ्गमपवित्रं स्यात् सर्वावस्थासु भामिनि॥४॥
दीक्षासंस्काररहितैरपवित्रशरीरकैः।
न संस्पृश्यं हि मल्लिङ्गमिति निर्णीतमद्रिजे॥५॥

देवी ने कहा —

शुद्ध, शाम्भव, सर्वदा इष्टलिङ्ग को धारण करने वाले यदि अनेक लोगों के साथ सम्पर्क होने से अपवित्र संसर्ग में पड़ जाएं, तब कैसे प्रायश्चित्त करना होगा? मुझे बताएँ॥१॥

महादेव ने कहा —

हे देवि! तुमने लोगों के हित की कामना से अच्छा पूछा! सदा इष्टलिङ्ग को अङ्ग में धारण करने वालों के लिए प्रायश्चित्त की विधि बतलाता हूँ॥२॥ लिंग सर्वदा शुद्ध होता है और शरीर सर्वदा अशुद्ध होता है। अतः षडध्व संशुद्धि के योग से[1] शुद्ध बनाकर॥३॥ इष्टलिङ्ग को इसमें प्रतिष्ठित किया जाता है, जिससे सभी अवस्थाओं में हे भामिनि! शारीरिक दोषों से इष्टलिङ्ग अपवित्र नहीं होता॥४॥ हे पर्वतपुत्रि! दीक्षा संस्कार से रहित अपवित्र शरीरवालों से शिवलिङ्ग का स्पर्श नहीं होना चाहिए, ऐसा निर्णय है॥५॥ हे प्रिये! अदीक्षित व्यक्ति को शिव की प्रतिष्ठा

---

१. वह क्रिया जिससे षडध्व का शोधन किया जाता है, जिससे शरीर शुद्ध बनता है।

प्रतिष्ठायां दीक्षितस्यैवाधिकारः

अदीक्षितो नाधिकारी प्रतिष्ठायां मम प्रिये।
दीक्षितैरेव कर्तव्यं प्रतिष्ठेति प्रतिश्रुतम्॥
अन्यथा राष्ट्रनाशः स्यात् तस्मादन्यैर्न कारयेत्॥ ६॥
परार्थपूजाधिकृतो यद्यपि स्याच्छिवद्विजः।
तथापि तस्य कानीनतया ब्राह्मण्यलोपतः॥ ७॥
आचार्यत्वानधिकृतेः प्रतिष्ठायां स नार्हति।
दीक्षासंस्कारयुक्तश्चेत् पूजायां स्थावरेषु सः॥
स्वपरार्थोपयुक्तायामधिकुर्यान्न संशयः॥ ८॥
दीक्षासंस्कारसंपन्नस्तस्माल्लिङ्गाङ्गसङ्गवान्।
लोकाराध्यत्वयोगेन प्रतिष्ठाधिकृतो भवेत्॥ ९॥
शैवदीक्षापवित्राङ्गाः सर्वावस्थास्वपि प्रिये।
स्पृशन्तो नैव दुष्यन्ति मम लिङ्गं सुशोभनम्॥१०॥
अदीक्षितः स्पृशन् लिङ्गं दोषी भवति निश्चितम्।
अदीक्षितैस्तु स्पृष्टं चेल्लिङ्गं संस्कार्यमेव हि॥११॥

करने का अधिकार नहीं है। यह प्रतिज्ञा है कि दीक्षित लोग ही प्रतिष्ठा करें। अन्यथा राष्ट्र का नाश हो जाता है। अतः दूसरों (अदीक्षितों) से प्रतिष्ठा न करवाए॥६॥ यद्यपि शिवद्विज दूसरों के लिए पूजा करने के निमित्त नियुक्त हुआ हो, पर यदि वह अविवाहित कन्या का पुत्र (कानीन) हो तो उसके ब्राह्मणत्व का नाश हो जाने के कारण॥७॥ प्रतिष्ठा में आचार्यत्व का उसे अधिकार नहीं होता। यदि वह दीक्षा संस्कार से युक्त हो, तब स्थावर लिङ्गों की अपने लिए और अन्य के लिए भी पूजा का अधिकारी हो जाता है, इसमें संशय नहीं है॥८॥ इसलिए दीक्षा संस्कार से सम्पन्न, इष्टलिङ्ग के साथ अपने अङ्गों का संसर्ग रखनेवाला व्यक्ति, लोगों द्वारा पूजित होने के कारण प्रतिष्ठा कराने का अधिकारी होता है॥९॥ हे प्रिये! शैव दीक्षा से पवित्र अङ्गों वाले साधक शोभन इष्टलिङ्ग का सभी अवस्थाओं में स्पर्श करते हुए भी दोष युक्त नहीं होते॥१०॥ अदीक्षित इष्टलिङ्ग का स्पर्श करने पर निश्चय ही दोषयुक्त हो जाता है। यदि अदीक्षित व्यक्ति इष्टलिङ्ग का स्पर्श कर दे, तब लिङ्ग का संस्कार करना ही होगा॥११॥

देव्युवाच

निशि निद्राविनिघ्नस्य लुठतः परिपार्श्वयोः।
लिङ्गस्याधस्थितिर्भाव्या कथं दोषः प्रशाम्यति ॥१२॥

महादेव उवाच

करपादादिसंस्पर्शहेतोर्दोषस्य सुभ्रुवः।
नान्या विनिष्कृतिः शस्ता प्रातः पत्युः पदानतेः ॥१३॥
तथोषसि प्रबोधाप्तौ मल्लिङ्गप्रणतिः परा।
सर्वदोषप्रशमनी नेत्रसंस्पर्शरूपिणी ॥१४॥

देव्युवाच

लिङ्गस्य धर्तुः शारीरदोषास्पर्शेऽपि नित्यशः।
अदीक्षितैश्च संस्पर्शो लोके संभाव्यते खलु ॥१५॥
वपनादिष्ववशतो नापितस्पर्श इष्यते।
हीनवर्णैरपि तथा चण्डालैः श्वपचैरपि ॥१६॥
लिङ्गिनः स्पर्शसंप्राप्तौ कीदृशी निष्कृतिर्भवेत्।
एतत्सर्वं समाचक्ष्व लोकानुग्रहतत्पर ॥१७॥

देवीने कहा —

रात्रि में नींद के मारे व्यक्ति का करवटें बदलते समय यदि इष्टलिङ्ग नीचे की ओर आ जाता है, तब दोष का शमन कैसे होगा ? ॥१२॥

महादेव ने कहा —

यदि स्त्री के हाथ पैर आदि के स्पर्श से दोष उत्पन्न हो, तब प्रातः उठकर पति के पैर छूने के अलावा अन्य उपाय नहीं है॥१३॥ उषा काल में जागने पर इष्टलिङ्ग को आँखों में लगाकर प्रणाम करना सभी दोषों का शमन करने वाली दूसरी विधा है॥१४॥

देवी ने कहा —

लिङ्गधारी व्यक्ति को शारीरिक दोष भले ही न लगे, पर प्रतिदिन लोक में अदीक्षित व्यक्तियों के साथ स्पर्श की सम्भावना तो निश्चय ही बनी रहती है॥१५॥ क्षौर कर्म आदि में विवश होकर नाई का स्पर्श करना पड़ता है, इसी प्रकार हीन वर्ण वालों श्वपच, चाण्डालों के साथ॥१६॥ लिङ्गधारी का स्पर्श हो जाने पर कैसे छुटकारा मिलेगा ? हे संसार पर अनुग्रह करने में तत्पर शिव ! यह सब मुझे बताइए॥१७॥

महादेव उवाच

वपनादौ न लिङ्गस्य मुण्डिस्पर्शो यथा भवेत्।
तथा प्रयतितव्यं खल्वन्यथा निष्कृतिः परा॥१८॥
लिङ्गिनो नापितस्पर्शे शिवसूत्रं विसृज्य च।
पुनर्नवं धार्यमेव ब्रह्मसूत्रं तथैव च॥
पञ्चाक्षरीं च गायत्रीमष्टोत्तरशतं जपेत्॥१९॥
लिङ्गस्य नापितस्पर्शे पवमानादिसूक्तकैः।
श्रीरुद्रेण च कर्तव्यं प्रोक्षणं सुविशेषतः॥२०॥
चण्डालादिजनस्पर्शे सूत्रयुग्ममपास्य च।
पवमानादिभिः प्रोक्ष्य चाष्टोत्तरसहस्रकम्॥
गायत्रीं मूलमन्त्रं च जप्त्वा नक्ताशनो भवेत्॥२१॥
अदीक्षितैः सवर्णैश्चासवर्णैश्चापि संगतौ।
मूलमष्टोत्तरशतं जपेत् तद्दोषशान्तये॥२२॥

देव्युवाच

निष्कृतिः कीदृशी प्रोक्ता कालभङ्गेऽर्चनस्य तु।
आपत्सु पूजालोपे च तथा लोपे जपस्य च॥
अलाभे पत्रपुष्पाणां नियतानां च संख्यया॥२३॥

महादेव ने कहा—

क्षौर आदि में जिस तरह इष्टलिङ्ग का खोपड़ी से स्पर्श न हो पाए, वैसा प्रयत्न करना चाहिए। नहीं तो इसके लिए छुटकारे का दूसरा उपाय है॥१८॥ लिङ्गधारी का नाई से स्पर्श हो जाने पर शिवसूत्र का त्याग करके नया शिवसूत्र और ब्रह्मसूत्र (यज्ञोपवीत) फिर से धारण करे। पञ्चाक्षरी तथा गायत्री का एक सौ आठ बार जप करे॥१९॥ यदि इष्टलिङ्ग का नाई से स्पर्श हो जाए, तब इष्टलिङ्ग का विशेष रूप से पवमान आदि सूक्तों तथा श्रीरुद्र मन्त्रों को पढ़कर प्रक्षालन करे॥२०॥ चाण्डाल आदि लोगों द्वारा स्पर्श होने पर दोनों सूत्रों का त्याग करके पवमान आदि पढ़ते हुए प्रक्षालन करके एक हजार आठ बार गायत्री तथा मूल मन्त्र का जप करे और केवल रात्रि में भोजन करे॥२१॥ अदीक्षित भले ही सवर्ण हो या असवर्ण, यदि उसका साथ हो जाए जब दोष की शान्ति के लिए मूल मन्त्र का एक सौ आठ बार जप करे॥२२॥

देवी ने कहा—

यदि पूजा के समय में व्यतिक्रम हो जाए, आपत्काल में पूजा और जप न कर सके, निश्चित संख्या में पत्र-पुष्प आदि न मिल सके, तब कैसे दोष से मुक्ति बतलाई गई है?॥२३॥

महादेव उवाच

मूलमष्टोत्तरशतं कालभङ्गेऽर्चनस्य तु।
पूजायाश्च जपस्यापि लोपे मूलं सहस्रकम्॥२४॥
अलाभे पत्रपुष्पाणां नियतानां सुलोचने।
एकैकस्य जपेदेव मूलमष्टोत्तरं शतम्॥२५॥

देव्युवाच

करात् प्रमादवशतश्च्युतं लिङ्गमधः पतेत्।
तदा वै किं नु कर्तव्यं प्रायश्चित्तं वदस्व मे॥२६॥

महादेव उवाच

प्रमादेन यदा लिङ्गं निजहस्तादधः पतेत्।
गृहीत्वा तत्तदा जप्यं मूलमष्टोत्तरं शतम्॥२७॥
अनुक्तानां च दोषाणां नित्यं संभावितात्मनाम्।
प्रायश्चित्ततया जप्यं मूलमष्टोत्तरं शतम्॥२८॥

देव्युवाच

गुरुदत्तस्य लिङ्गस्य भङ्गो लोपोऽथवा भवेत्।
किं नु कार्यं तदा देव कृपया तन्निबोध मे॥२९॥

महादेव ने कहा—

पूजा के काल में व्यतिक्रम हो जाए, तब मूल मन्त्र का एक सौ आठ बार तथा पूजा और जप न कर सकने पर मूल मन्त्र का एक हजार बार जप करे॥२४॥ निश्चित संख्या में पत्र-पुष्प न मिलने पर हे सुलोचने! प्रत्येक कमी के लिए मूल मन्त्र का एक सौ आठ बार जप करे॥२५॥

देवी ने कहा—

असावधानी से यदि इष्टलिङ्ग हाथ से छूटकर नीचे गिर जाए, तब कैसा प्रायश्चित्त करना चाहिए, यह मुझे बताएँ॥२६॥

महादेव ने कहा—

यदि असावधानी से इष्टलिङ्ग अपने हाथ से नीचे गिर पड़े, तब उसको लेकर एक सौ आठ बार मूल मन्त्र का जप करे॥२७॥ ऐसे भी दोष सदा संभव होते हैं, जिनका कथन नहीं किया गया है। उन दोषों के प्रायश्चित्त के रूप में मूल मन्त्र का एक सौ आठ बार जप करना चाहिए॥२८॥

देवी ने कहा—

यदि गुरु द्वारा प्रदत्त इष्टलिङ्ग टूट जाए या खो जाए, तब हे देव! कृपया मुझे बताएँ कि क्या करना चाहिए?॥२९॥

महादेव उवाच

हन्त ते कथयामीदं रहस्यमपि सुव्रते।
द्वित्रिखण्डतया भङ्गे बध्वा सर्जरसेन तु॥
कृत्वा तत्त्वकलान्यासं पूजयेदविशेषतः॥३०॥
चूर्णीभावे तु लिङ्गस्य चान्यस्मिन् तद्गताः कलाः।
आरोप्य बिभृयाल्लिङ्गं पुनर्लब्धं गुरोः करात्॥३१॥
अथ लिङ्गस्य लोपे तु कर्तव्यं शृणु सुन्दरि।
लिङ्गस्यादर्शने त्याज्याः प्राणाः स्युर्भक्तियोगतः॥३२॥
प्राणत्यागे त्वशक्तश्चेदेकविंशद्दिनावधि।
निराहारो जपन्मूलं लिङ्गमन्वेषयेज्जनैः॥३३॥
यदा वै लभते लिङ्गं धृत्वा भक्त्या तदैव तत्।
गुरुं माहेश्वरांश्चैव यथाशक्ति समर्चयेत्॥३४॥
तदाप्यलाभे विसृजेदसून् सद्भक्तियोगतः।
प्राणत्यागे त्वशक्तश्चेल्लिङ्गमन्यद् गुरोः करात्॥३५॥

महादेव ने कहा—

हे सुव्रते! अच्छा तो यह रहस्य भी मैं तुम्हें बतलाता हूँ। यदि इष्टलिङ्ग दो या तीन टुकड़ों में टूट गया हो, तब सर्ज[2] के रस से उन टुकड़ों को जोड़ कर तत्त्वकला[3] का न्यास करने के बाद सामान्य पूजन करे॥३०॥ यदि इष्टलिङ्ग चूर-चूर हो गया हो, तब उस इष्टलिङ्ग की कलाओं को अन्य लिङ्ग में आरोपित करके पुनः गुरु के हाथ से लेकर, उसे धारण करे॥३१॥ जब इष्टलिङ्ग खो जाए, तो हे सुन्दरि! सुनो कि क्या करना चाहिए। यदि इष्टलिङ्ग न मिले तब भक्तियोग से प्राणों का त्याग कर देना चाहिए॥३२॥ यदि प्राण त्याग न कर पाए, तब इक्कीस दिनों तक मूल मन्त्र का जप करता हुआ निराहार रहकर लोगों द्वारा उसकी खोज करवाए॥३३॥ जब भी इष्टलिङ्ग मिल जाए, उसी समय भक्तिपूर्वक उसको धारण करके गुरु तथा माहेश्वरों का यथाशक्ति पूजन करे॥३४॥ यदि खोज करवाने पर भी इष्टलिङ्ग न मिले, तब भक्तियोग के द्वारा प्राण त्याग दे। यदि प्राण त्याग न कर सके, तब गुरु के हाथ से दूसरा लिङ्ग॥३५॥ लेकर पहलेवाले इष्टलिङ्ग की कलाओं को उसमें

---

२. सर्ज का रस राल कहलाता है।

३. तत्त्वकलान्यास—दे. वीरशैवाचारप्रदीपिका, पृ० ४१-४२

आकृष्टपूर्वलिङ्गीयकलान्यासाभिशोभितम्।
षडध्वन्यासकलितं बिभृयादप्रमादतः ॥३६॥

देव्युवाच

देवदेव महादेव धृते लिङ्गे नवे ततः।
लभेत चेत् पूर्वलिङ्गं कर्तव्यं किं वदस्व मे ॥३७॥

महादेव उवाच

पूर्वलिङ्गोपलम्भेऽपि त्यजेन्नैव धृतं नवम्।
यत्तदीयकलाः सर्वा नवे संवेशिताः पुरा ॥
तत्पूर्वलिङ्गं गुरवे विनिवेद्य क्षिपेज्जले ॥३८॥

देव्युवाच

नष्टलिङ्गस्त्यजेत् प्राणान् यदि देहं तदीयकम्।
तत्कथं ब्रूहि संस्कार्यमनर्हं लिङ्गवर्जितम् ॥३९॥
यदि धार्यं लिङ्गमन्यत् प्राणत्यागो निरर्थकः।
चेदधार्यमसंस्कार्यं गात्रं तस्य भवेत् तदा ॥४०॥
दोषस्तूभयथा दृष्टो नष्टलिङ्गस्य देहिनः।
एनं मे संशयं छिन्धि करुणावरुणालय ॥४१॥

खींचकर आधान करने से सुशोभित इस नए षडध्वकलान्यास से युक्त लिङ्ग को सावधानीपूर्वक धारण कर ले ॥३६॥

देवी ने कहा—

हे देवाधिदेव महादेव! नए लिङ्ग को धारण करने के बाद यदि पहलेवाला लिङ्ग मिल जाए, तब मुझे बताएँ कि क्या करना चाहिए? ॥३७॥

महादेव ने कहा—

पहले वाले लिङ्ग के मिल जाने पर भी धारण किए गए नए लिङ्ग का त्याग नहीं करना चाहिए, क्योंकि पुराने लिङ्ग की सारी कलाओं को पहले ही नए लिङ्ग में डाल दिया गया है। उस पुराने लिङ्ग को गुरु को दिखाकर जल में फेंक दे ॥३८॥

देवी ने कहा—

जब लिङ्ग के खो जाने पर व्यक्ति प्राण त्याग करे, तब उसके शरीर का कैसे संस्कार करना चाहिए, क्योंकि लिङ्ग से रहित शरीर का संस्कार नहीं होता? ॥३९॥ यदि अन्य लिङ्ग का धारण करना है, तब प्राण त्याग निरर्थक है। यदि धारण नहीं किया है, तब उसका शरीर संस्कार के योग्य नहीं है ॥४०॥ लिङ्ग का नाश हो जाने वाले प्राणी के बारे में दोनों स्थितियों में दोष दिखाई देता है। हे करुणासागर! मेरे इस संशय को दूर करें ॥४१॥

महादेव उवाच

त्यक्तासोर्नष्टलिङ्गस्य तत्क्षणे मोक्षसंगतिः।
नानर्थस्तदसुत्यागः संस्कारस्तु यथा शृणु ॥४२॥
आकृष्टनष्टलिङ्गीयकलान्यासयुतं नवम्।
लिङ्गमन्यत् सुसंयोज्य संस्कुर्याद् विधिना तनुम् ॥४३॥
संस्कारार्थं पुनर्लिङ्गे योजितेऽपि शरीरके।
त्यक्तासोर्नैव लोपोऽस्ति यदयं मोक्षमाप्तवान्।
तल्लिङ्गं प्राणवद् धार्यमप्रमादेन सर्वदा ॥४४॥
सर्वं ते कथितं देवि रहस्यमपि सुव्रते।
अपुत्रायाप्यशिष्याय न प्रकाश्यमिदं त्वया ॥४५॥

इति श्रीकारणागमे उत्तरभागे पार्वतीपरमेश्वरसंवादे क्रियापादे प्रायश्चित्तविधिकथनं नाम दशमः पटल ॥१०॥

महादेव ने कहा—

लिङ्ग के नष्ट हो जाने पर प्राण त्याग करने वाले को उसी क्षण मोक्ष मिल जाता है। उसके द्वारा प्राणत्याग निरर्थक नहीं है। जैसे उसके शरीर का संस्कार करना चाहिए, उस प्रकार को सुनो॥४२॥ खोए लिङ्ग की कलाओं के न्यास से युक्त दूसरे नए लिङ्ग को मृत के शरीर के साथ संपृक्त करके विधिपूर्वक मृत भक्त के शरीर का संस्कार करना चाहिए॥४३॥ संस्कार के निमित्त शरीर में नया लिङ्ग योजित होने पर भी प्राण त्याग करने वाले का नाश नहीं होता, क्योंकि उसे मोक्ष पहले ही प्राप्त हो गया है। इसलिए बिना प्रमाद के सर्वदा प्राण की तरह इष्टलिङ्ग का धारण करना चाहिए॥४४॥ हे सुव्रते देवि! तुमसे सब कुछ कह दिया और रहस्य भी बतला दिया। जो पुत्रहीन हो या जो शिष्य न हो, उसको तुम इसे नहीं बताना॥४५॥

श्रीकारणागम के उत्तरभाग में श्रीपार्वतीपरमेश्वरसंवादरूपक्रियापादान्तर्गत प्रायश्चित्तविधिकथन नामक दशम पटल समाप्त हुआ॥१०॥

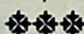


परिशिष्टभागे

श्लोकार्धानुक्रमणी

सहायकग्रन्थसूची

श्लोकार्धानुक्रमणी



सहायक ग्रन्थसूची

अजितागमः (भागद्वयात्मकः) — फ्रेंच इंस्टीट्यूट, पांडिचेरी, सन् १९६४ एवं १९६७

अथर्वशिर उपनिषद् — उपनिषत्संग्रह द्रष्टव्य।

अनुभवसूत्रम् — तन्त्रसंग्रह, भाग १, पृ० १२९-१७४, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, सन् १९७०

अमरकोशः सुधाव्याख्यासहितः — निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, सन् १९२९

अष्टप्रकरणम् — (तत्त्वप्रकाश – तत्त्वसंग्रह – तत्त्वत्रयनिर्णय – रत्नत्रय – भोगकारिका – नादकारिका – मोक्षकारिका – परमोक्षनिरासकारिकाख्य-प्रकरणाष्टकात्मकम्) सं० सं० वि० वि०, वाराणसी, सन् १९८८

अष्टावरण विज्ञान (हिन्दी) — डॉ० चन्द्रशेखर शिवाचार्य, श्री गुरु अमरेश्वर प्रकाशन, अमरेश्वर मठ, गुलेदगुड्ड, कर्णाटक, सन् १९८५

आगम और तन्त्रशास्त्र — प्रो० व्रजवल्लभ द्विवेदी, परिमल पब्लिकेशंस, दिल्ली, सन् १९८४

ईशाद्यष्टोत्तरशतोपनिषदः — नि० सा० प्रेस. बम्बई, १९२५।।

ईशावास्योपनिषत् शाङ्करीव्याख्या — शैवभारती शोध प्रतिष्ठान, वाराणसी।

उपनिषद्वाक्यमहाकोशः — गुजराती प्रिन्टिंग प्रेस, बम्बई, १९४०

उपनिषत्संग्रहः — मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, सन् १९७०

ऋग्वेदः (मूलमात्रम्) — सातवलेकर संस्करण, स्वाध्याय मंडल, पारडी।

ऋग्वेदः (खिलभागः) — सातवलेकर संस्करण, पूर्ववत्।

कर्मकाण्डक्रमावली (सोमशम्भुपद्धति) — कश्मीर संस्कृत ग्रन्थावली, श्रीनगर, सन् १९४७

कात्यायनयज्ञपद्धति विमर्श (हिन्दी) — डॉ० मनोहरलाल द्विवेदी, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली, सन् १९८८

कूर्मपुराणम् — मनसुखराय मोर, कलकत्ता, सन् १९६२

कूर्मपुराणः धर्म और दर्शन — मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, सन् १९९४

क्रियासारः, भाग १-३ — प्राच्यविद्या संशोधनालय, मैसूर, १९५४

गणकारिका — गायकवाड ओरियण्टल सिरीज, बड़ोदा, सन् १९६६

चन्द्रज्ञानागमः — प० काशीनाथ शास्त्री, श्री पंचाचार्य इलेक्ट्रिक प्रेस, मैसूर, सन् १९४०, १९५६ (कन्नड़ लिपि)।

तत्त्वप्रकाशः — अष्टप्रकरण देखिये।

तन्त्रयात्रा (संस्कृत) — प्रो० व्रजवल्लभ द्विवेदी, रत्ना पब्लिकेशंस वाराणसी, सन् १९८३

तन्त्रसंग्रहः — (वातुलशुद्धाख्य–सूक्ष्म–देवीकालोत्तर–पारमेश्वरतन्त्रात्मकः) शंकरप्पा अच्चय्या टोपिगि, मैसूर, सन् १९४१

तन्त्रालोकः, विवेकव्याख्यासहितः — (१२ भागात्मकः), कश्मीर संस्कृत ग्रन्थावली, श्रीनगर, सन् १९१८–१९३८

तैत्तिरीयसंहिता — सातवलेकर संस्करण, स्वाध्याय मंडल, पारडी।

तैत्तिरीयारण्यकम् — आनन्दाश्रम मुद्रणालय, पूना।

धर्मशास्त्र का इतिहास (हिन्दी अनुवाद) भाग तृतीय, हिन्दी समिति, लखनऊ, सन् १९७५

निगमागम संस्कृति (हिन्दी) — वीरशैव अनुसन्धान संस्थान, जंगमवाडी मठ, वाराणसी, सन् १९९२

नित्याषोडशिकार्णवः (ऋजुविमर्शिनी-अर्थरत्नावलीटीकाद्वयसहितः) — सं० सं० वि० वि०, वाराणसी, सन् १९८४

नेत्रतन्त्रम् उद्योतसहितम् — परिमल पब्लिकेशंस, दिल्ली, सन् १९८५

परमरहस्य (मराठी) — मन्मथ स्वामी, राजूर वीरमठ संस्थान, अहमदपुर, लातूर (महाराष्ट्र)।

पातञ्जलयोगसूत्रं सभाष्यम् — आनन्दाश्रम मुद्रणालय, सन् १९३२

पाशुपतसूत्रं पञ्चार्थभाष्यसहितम् — त्रिवेन्द्रम् संस्कृत ग्रन्थमाला, त्रिवेन्द्रम्, सन् १९४०

प्रपञ्चसारः (भागद्वयात्मकः) — आगमानुसन्धान परिषद्, कलकत्ता, सन् १९३५

बृहदारण्यकोपनिषत् — उपनिषत्संग्रह द्रष्टव्य।

ब्रह्मसूत्रशाङ्करीवृत्तिः — मैसूर, १९७४

ब्रह्मसूत्रश्रीकरभाष्यम् — मैसूर, १९७७

भगवद्गीता — गीता प्रेस, गोरखपुर।

भस्मजाबालोपनिषद् — उपनिषत्संग्रह द्रष्टव्य।

भागवतमहापुराणम् — गीता प्रेस, गोरखपुर, संवत् २०१०

भोगकारिका — अष्टप्रकरण द्रष्टव्य।

मनुस्मृतिः (भाषानुवादसहिता) — निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, सन् १९२९

महानारायणोपनिषत् — केदारनाथ शिवतत्त्व ग्रन्थमाला, काशी, सन् १९२९

महाभारतम् — गीता प्रेस, गोरखपुर।

मुण्डकोपनिषत् — उपनिषत्संग्रह द्रष्टव्य।

मोक्षकारिका — अष्टप्रकरण देखिये।

याज्ञवल्क्यस्मृतिः — स्मृतिसन्दर्भ, भाग ३, मनसुखराय मोर, कलकत्ता, सन् १९५२

योगिनीहृदयं दीपिकासहितम् — मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, सन् १९८८

रत्नत्रयम् — वाणी विलास मुद्रणालय, श्रीरङ्गम्, १९४०

रत्नत्रयोल्लेखिनी — अष्टप्रकरण देखिये।
लिङ्गधारणचन्द्रिका — शैवभारती भवन, जंगमवाडी मठ, वाराणसी, सन् १९८८
लुप्तागमसंग्रहः (द्वितीय भाग) — सं० सं० वि० वि०, वाराणसी, सन् १९८३
वचन परिभाषा कोश (कन्नड़) — कन्नड मत्तु संस्कृति निदेशालय, बंगलोर, सन् १९९३
वरिवस्यारहस्यम् — अडयार लाइब्रेरी, अडयार, मद्रास, सन् १९४८
वाल्मीकिरामायणम् — चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, सन् १९५७
वीरशैवलिङ्गिब्राह्मणदशकर्मपद्धतिः — श्री मल्लिकार्जुन शास्त्री, सोलापुर, सन् १९०६
शिवपुराणम् — पण्डित पुस्तकालय, काशी, संवत् २०२०
शिवतत्त्वरत्नाकरः — मैसूर, १९६४-१९६९
शिवाद्वैतमञ्जरी — मैसूर, १९०९
शुक्लयजुर्वेदमाध्यन्दिनसंहिता, उव्वटमहीधरभाष्यसहिता — मोतीलाल बनारसीदास, सन् १९८७
श्रीकरभाष्य चतुःसूत्री — जंगमवाड़ी मठ, वाराणसी, १९५६
षट्चक्रनिरूपणम् — चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, वाराणसी, सन् १९९१
सांख्यकारिका, सांख्यतत्त्वकौमुदीसहिता — चौखम्बा संस्कृत सिरीज, वाराणसी, सन् १९३२
सिद्धान्तशिखामणिः सव्याख्या — शैवभारती भवन, जंगमवाडी मठ, वाराणसी, सन् १९९३
सिद्धान्तशिखामणिसमीक्षा — शैवभारती भवन, जंगमवाडी मठ, वाराणसी, सन् १९८९
सोमशम्भुपद्धतिः — कर्मकाण्डक्रमावली द्रष्टव्य।



जंगमवाडी मठ में उपलब्ध ग्रन्थ

(१) लिङ्गधारणचन्द्रिका (हिन्दी भावानुवादसहित)

(२) सिद्धान्तशिखामणि:, तत्त्वप्रदीपिकाख्यसंस्कृतव्याख्यासहित:, मराठी भावानुवाद-सहितश्च। सं० ज० डॉ० चन्द्रशेखर शिवाचार्य महास्वामी, विशेष आवृत्ति

(३) श्रीकण्ठभाष्यम् (चतु:सूत्री) अप्पयदीक्षितकृत शिवार्कमणि-दीपिकासंस्कृत-टीकासहितम्

(४) वीरशैव अष्टावरण विज्ञान (मराठी और हिन्दी) (भाग १-१३) डॉ० चन्द्रशेखर शिवाचार्य महास्वामी

(५) जन्म हा अखेरचा (मराठी) (भाग १-१३) ज० डॉ० चन्द्रशेखर शिवाचार्य महास्वामी

(६) सिद्धान्तशिखामणि-समीक्षा (संस्कृत-शोधप्रबन्ध) डॉ० चन्द्रशेखर शिवाचार्य महास्वामी

(७) श्रीशिवपूजाविधि: (मराठी)

(८) महानारायणोपनिषद् (वीरशैवभाष्य)

(९) शक्तिविशिष्टाद्वैत सिद्धांत (मराठी)

(१०) सिद्धान्तशिखामणि: (मूलमात्र)

(११) निगमागम संस्कृति (हिन्दी) पं० व्रजवल्लभ द्विवेदी

(१२) वीरशैव पंचपीठ परंपरा (मराठी) अनुवादक डॉ० चन्द्रशेखर कपाळे

(१३) ईशावास्योपनिषद् (शाङ्करी व्याख्योपेता)

(१४) केनोपनिषद् (शाङ्करी व्याख्योपेता)

(१५) मुण्डकोपनिषद् (शाङ्करी व्याख्योपेता)

(१६) सिद्धान्तशिखोपनिषद् (शाङ्करी व्याख्योपेता)

(१७) सूक्ष्मागम:, हिन्दी भावानुवादसहित:, सं० पं० व्रजवल्लभ द्विवेदी

(१८) चन्द्रज्ञानागम:, हिन्दी भावानुवादसहित:, सं० पं० व्रजवल्लभ द्विवेदी

(१९) मकुटागम:, हिन्दी भावानुवादसहित:, सं० पं० व्रजवल्लभ द्विवेदी

(२०) कारणागम:, हिन्दी भावानुवादसहित:, सं० पं० रामचन्द्र पाण्डेय